ग्लोबल ऑब्ज़र्वर

₹5/

मतलब निर्भीक और निष्पक्ष

इस छोर से उस छोर तक

RNI NO. DELHIN/2016/71079

राष्ट्रीय साप्ताहिक

वर्ष : 09, अंक : 20

09-15 जून, 2025

हजारी प्रसाद द्विवेदी के प्रिय शिष्य डॉ विश्वनाथ त्रिपाठी को आचार्य हाशमी स्मृति पुरस्कार-2025

ग्लोबल ऑब्ज़र्वर

मतलब निर्भीक और निष्पक्ष

इस छोर से उस छोर तक

RNI NO. DELHIN/2016/71079

ग्लोबल ऑब्ज़र्वर पढ़ें और पढ़ाएं

एक शुभचिंतक, दिल्ली

हिंदी में शपथ न्याय भाषा में बदलाव की दस्तक

उमेश चतुर्वेदी

बीते 14 मई को राष्ट्रपति भवन में हिंदी के प्रयोग ने एक नया इतिहास रच दिया। देश के 52वें मुख्य न्यायाधीश के रूप में न्यायमूर्ति भूषण रामकृष्ण गवई का शपथ ग्रहण समारोह ऐतिहासिक बन गया। उन्होंने हिंदी में शपथ लेकर एक नई परंपरा की शुरूआत की। अब तक सभी मुख्य न्यायाधीश अंग्रेजी में ही शपथ लेते रहे हैं।

देश के प्रधानमंत्री, राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, राज्यों के राज्यपाल और मुख्यमंत्री जैसी प्रमुख हस्तियां पहले से ही हिंदी में शपथ लेती रही हैं, लेकिन न्यायपालिका का सर्वोच्च पद अब तक इससे अछूता था। महाराष्ट्र के विदर्भ क्षेत्र से ताल्लुक रखने वाले न्यायमूर्ति गवई ने हिंदी में शपथ लेकर उस परंपरा को तोड़ा और न्यायपालिका में अब तक उपेक्षित रही हिंदी को सम्मान दिया।

उनके इस निर्णय का विभिन्न सामाजिक संगठनों ने स्वागत किया है। अपने शपथ ग्रहण में मातृभाषा का प्रयोग कर न्यायमूर्ति गवई ने देश के करोड़ों हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं के प्रेमियों को एक नई उम्मीद से भर दिया है। लोगों को आशा है कि उनके नेतृत्व में न्यायपालिका में हिंदी सहित सभी भारतीय भाषाओं को उचित सम्मान और स्थान प्राप्त होगा।

यह विडंबना ही है कि छह वर्ष पूर्व संयुक्त अरब अमीरात (यूएई) की अदालतों में हिंदी में सुनवाई की अनुमति दी जा चुकी है, जबकि भारत की सर्वोच्च न्यायपालिका आज भी अंग्रेजी तक ही सीमित है। न्यायमूर्ति गवई से अपेक्षाएं इसलिए भी हैं क्योंकि उनके पद में महत्वपूर्ण अधिकार निहित हैं। मुख्य न्यायाधीश की सहमति के बिना किसी भी उच्च न्यायालय में कार्यवाही की भाषा स्थानीय नहीं बन सकती। संविधान के अनुच्छेद 348(1)(ए) के अनुसार, सुप्रीम कोर्ट और सभी हाईकोर्ट की कार्यवाही अंग्रेजी में ही की जाएगी। हालांकि, इसी अनुच्छेद के भाग (2) में यह प्रावधान भी है कि यदि कोई राज्य अपनी राजभाषा में न्यायिक कार्य करना चाहता है, तो राज्यपाल राष्ट्रपति की सहमति प्राप्त कर संबंधित हाईकोर्ट की कार्यवाही में हिंदी या राज्य की अन्य आधिकारिक भाषा के प्रयोग की अनुमति दे सकता है। राजभाषा अधिनियम, 1963 की धारा 7 में भी इसी तरह का प्रावधान किया गया है। इसके तहत राज्यपाल, राष्ट्रपति की पूर्व सहमति से, उच्च न्यायालय के निर्णय या आदेशों के लिए अंग्रेजी के साथ-साथ हिंदी या राज्य की अन्य राजभाषा के प्रयोग को अनुमति दे सकता है। दुर्भाग्यवश, इन संवैधानिक और विधिक प्रावधानों के बावजूद, आज तक इनका उपयोग बहुत सीमित रहा है।

संविधान के प्रावधानों के तहत हिंदी को 26 जनवरी, 1965 से राजभाषा के तौर पर पूरे देश में कामकाज करने की अनुमति मिलनी थी। लेकिन इसके खिलाफ तीखे विरोध के साथ तमिलनाडु की द्रविड़ राजनीति मैदान में कूद पड़ी थी। हालांकि, जब उसे अहसास हुआ कि गणतंत्र दिवस पर ऐसा करना उचित नहीं होगा तो एक दिन पहले यानी 25 जनवरी को उसने ऐसा किया। राजभाषा को लेकर होते रहे ऐसे विवादों की वजह से राजभाषा नीति पर विचार के लिए मंत्रिमंडल समिति का गठन किया गया। जिसने 21 मई, 1965 की अपनी बैठक में यह तय किया कि हाईकोर्ट में अंग्रेजी के अलावा किसी अन्य भाषा के प्रयोग से संबंधित प्रस्ताव पर देश के मुख्य न्यायाधीश की सहमति प्राप्त की जानी चाहिए। भारतीय भाषा प्रेमियों की नजर में यह प्रावधान भारतीय भाषाओं की न्याय की भाषा बनने की राह में सबसे बड़ी बाधा है।

सांविधानिक प्रावधान के अंतर्गत हिंदी में कामकाज की अनुमति सबसे पहले राजस्थान को हासिल हुई, जिसे हिंदी में कार्यवाही की अनुमति 1950 में मिली। इलाहाबाद हाईकोर्ट में हिंदी कार्यवाही की अनुमति 1969 में मिली, जबकि मध्य प्रदेश को 1971 और बिहार को 1972 में मिली। कई राज्य ऐसे हैं, जिन्होंने समय-समय पर अपनी भाषाओं में अपने हाईकोर्ट में कार्यवाही चलाने की अनुमति मांगी, लेकिन उन्हें नाकामी ही मिली।

यद्यपि तमाम सांविधानिक प्रावधानों और उनकी बाधा के बावजूद भारतीय भाषा प्रेमियों का उत्साह कम नहीं हुआ। वे भारतीय भाषाओं को न्यायपालिका की भाषा बनाने की मांग करते रहे हैं। इसका असर उच्च न्यायपालिका पर भी पड़ा है। बेशक न्यायिक कार्यवाही भारतीय भाषाओं में नहीं हो रही है, लेकिन फैसलों और न्यायिक कार्यवाही तक आम लोगों की सहज पहुंच बनाने की दिशा न्यायलय आगे बढ़े हैं। इसके तहत कार्यवाही और निर्णयों का अंग्रेजी से क्षेत्रीय भाषाओं में अनुवाद को बढ़ावा दिया जा रहा है। सुप्रीम कोर्ट ने न्यायमूर्ति अभय एस ओका की अध्यक्षता में एआई सहायता प्राप्त कानूनी अनुवाद सलाहकार समिति का गठन किया है। इसके जरिए अब तक 16 भाषाओं में हजारों फैसलों आदि का अनुवाद किया जा रहा है। ओका समिति की तरह सभी हाईकोर्टों ने भी अपने यहां अनुवाद के लिए समितियां बनाई हैं। कानून और न्याय मंत्रालय के अधीन बार काउंसिल ऑफ इंडिया ने देश के पूर्व मुख्य न्यायाधीश न्यायमूर्ति एस.ए. बोबडे की अध्यक्षता में 'भारतीय भाषा समिति' का भी गठन किया है। यह समिति कानूनी सामग्री का क्षेत्रीय भाषाओं में अनुवाद करने के उद्देश्य से सभी भारतीय भाषाओं के लिए एक समान शब्दावली विकसित कर रही है।

ग्लोबल ऑब्ज़र्वर
मतलब निर्भीक और निष्पक्ष | इस छोर से उस छोर तक
RNI NO. DELHIN/2016/71079

वर्ष : 09, अंक : 20
09-15 जून, 2025

संपादक
ए आर आज़ाद

ब्यूरो प्रमुख
रुफी शमा

बेगूसराय ब्यूरोचीफ
एस आर आज़मी

ब्यूरो ऑफिस बिहार
बजरंगबली कॉलोनी, नहर रोड,
जज साहब के मकान के सामने, फुलवारी शरीफ,
पटना, बिहार-801505

संपादकीय एवं पंजीकृत कार्यालय
81-बी, सैनिक विहार, फ़ेज़-2, मोहन गार्डेन,
उत्तम नगर, नई दिल्ली-110059
Email: doosramat@gmail.com
MOBILE. 9810757843
Whatsapp. 9643709089

स्वामी, मुद्रक, प्रकाशक एवं संपादक
ए आर आजाद द्वारा 81-बी, सैनिक विहार, फ़ेज़-2, मोहन गार्डेन, उत्तम नगर, नयी दिल्ली-110059 से प्रकाशित एवं चंद्रशेखर प्रिंटर्स, डब्लूय जेड-439, नारायणा विलेज, नई दिल्ली-110028 से मुद्रित।
संपादक- ए आर आज़ाद
RNI NO.: DELHIN/2016/71079
Declaration No. F.2 (G-9) Press 2016
Contact No. 09643709089, 09810757843
Email:globalobserverindia@gmail.com

समाचार-पत्र में छपे सभी लेख, लेखकों के निजी विचार हैं, इनसे संपादक या प्रकाशक का सहमत होना अनिवार्य नहीं। समाचार-पत्र में छपे लेखों के प्रति संपादक की जवाबदेही नहीं होगी। सभी विवादों का समाधान दिल्ली की हद में आने वाली सक्षम अदालतों में ही होगा। *उपरोक्त कुछ पद अवैतनिक हैं।*

आवरण 16
डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी को आचार्य 'हाशमी' स्मृति पुरस्कार- 2025

ग़ौरतलब 03
हिन्दी में शपथ...

मीमांसा 08
युवाओं के सिर ताज!

बेबाक 22
पर्यावरण की सुरक्षा

हलचल 28
मस्क ने ट्रंप से खींचा हाथ

दृष्टिकोण 06
व्यवस्था का बेनक़ाब होना

पत्रकारिता को विश्वसनीय बनाना होगा

सरकार मतलब राष्ट्र नहीं होता है। सरकार निरंकुश भी हो सकती है। और देश के लिए अभिशाप भी। जनता और जनता को राह दिखाने वाला मीडिया का परम कर्तव्य है देश के प्रति वफ़ादार होना। समाज के प्रति उत्तरदायी होना। देश को विकास के पथ पर ले जाने के लिए सरकार को रास्ते दिखाना। और जब भी कभी सरकार डगमगाने लगे तो अपने हाथ बढ़ाकर उसे संभालना। कभी सचेत करना। और निरंकुशता की सीमा पार करती सरकार को कभी- कभार आंखें भी तरेरना मीडिया का असली काम है।

पत्रकारिता का भी अपना एक धर्म होता है। पत्रकारिता का धर्म है सच देखना, सत्य की खोज करना, सत्य को बचाना और झूठ, फ़रेब, मक्कारी और भ्रष्टाचार की बेतरतीब इमारत को ज़मींदोज़ करना। लेकिन इससे भी बड़ा उसका धर्म है सरकार की आलोचना करना। सरकार से डरकर लिखना और सरकार के लिए लिखना पत्रकारिता नहीं है।

आज की पत्रकारिता को देखने के बाद ऐसा लगता है कि पत्रकारिता आज अपने ही हाथों मर रही है। वह समूल नाश की ओर तेजी के साथ अग्रसर है। पत्रकारिता के जो गुण हैं, वह अब पाठ्यक्रम के पन्नों में ही सिमट कर रह गए हैं। मीडिया संस्थान से पढ़कर निकलने वाले छात्र अख़बार और टीवी की दुनिया में जब जाते हैं तो वहां का माहौल और किताब की दुनिया दोनों ध्रुव पर खड़ी नज़र आती है। नतीजे में वह किताब को इतिहास समझ कर मौजूदा माहौल को क़बूल करते हुए आगे बढ़ता है। और तेज़ी के साथ सरकार का भोंपू बनने की ओर अग्रसर हो जाता है।

टीवी चैनल ने तो पत्रकारिता को सरकार के सामने गिरवी ही रख दिया। हिन्दी चैनल सरकार के सामने घुटने टेकने में अब फ़ख़्र महसूस करने लगा है। उसका अंदाज़ यही बयां करने लगा है कि सरकार जो बोले वही सही। सरकार का जो गुणगान करे, वही मीडिया। नतीजे में ज़्यादातर टीवी वाले अपनी नैतिकता और पत्रकारीय मापदंड को ताक पर रख कर सरकारी पत्रकारिता का एक नया अध्याय शुरू कर चुके हैं। यह खुले तौर पर 2014 से सीना तान कर सामने आया। और आज भी सरकार के सामने नतमस्तक है।

मीडिया को आदर्श से पीछा छोड़ाना न सिर्फ़ अनैतिक है बल्कि समाज के लिए भी ठीक नहीं है। समाज को दिशा साहित्य प्रदान करता रहा है। और मीडिया ने हद तक उसमें हस्तक्षेप करते हुए समाज के नवनिर्माण का अंग बना। मीडिया एक अरसे तक अपनी आदर्श की प्रकाष्ठा को क़ायम रखा। और दुनिया के लोकतांत्रिक देशों के मीडिया से आगे बढ़कर अपनी बेबाकी और निष्पक्षता का लोहा मनवाया। 2014 से पहले तक कोई सरकार मीडिया को प्रबंध करने के लिए कसरत नहीं करती थी। सरकार अपना काम करती थी, मीडिया सरकार को अपने हिसाब से आईना दिखाता था। इसमें न तो कोई प्रलोभन और न ही किसी भय की खिचड़ी पकती थी।

मीडिया राष्ट्र का सजग प्रहरी होता है। देश के प्रति अपनी वफ़ादारी में किसी को हिस्सेदार नहीं बनाना, उसकी पहली नैतिक ज़िम्मेदारी है। सरकार मतलब राष्ट्र नहीं होता है। सरकार निरंकुश भी हो सकती है। और देश के लिए अभिशाप भी। जनता और जनता को राह दिखाने वाला मीडिया का परम कर्तव्य है देश के प्रति वफ़ादार होना। समाज के प्रति उत्तरदायी होना। देश को विकास के पथ पर ले जाने के लिए सरकार को रास्ते दिखाना। और जब भी कभी सरकार डगमगाने लगे तो अपने हाथ बढ़ाकर उसे संभालना। कभी सचेत करना। और निरंकुशता की सीमा पार करती सरकार को कभी- कभार आंखें भी तरेरना मीडिया का असली काम है। यानी सरकार की खुलकर आलोचना करना पत्रकारिता का अपना परम धर्म है। इस धर्म को ईमानदारी पूर्वक निभाने से उसे कोई नहीं रोक सकता। रोकना भी नहीं चाहिए।

ललित गर्ग
स्तंभकार

बेंगलुरु में व्यवस्था का बेनकाब होना

बढ़ते तापमान रॉयल चैलेंजर्स बेंगलुरु (आरसीबी) की शानदार जीत के बाद आयोज्य जश्न के मातम, हाहाकार एवं दर्दनाक मंजर ने राज्य की सुरक्षा व्यवस्था की पोल ही नहीं खोली बल्कि सत्ता एवं खेल व्यवस्थाओं के अमानवीय चेहरे को भी बेनकाब किया है। आरसीबी विक्ट्री परेड के दौरान चिन्नास्वामी स्टेडियम के पास अचानक मची भगदड़ में 11 लोगों की मौत हो गई जबकि 50 गंभीर रूप से घायल हुए हैं। भगदड़ में लोगों की जो दुखद मृत्यु हुई, यह राज्य प्रायोजित एवं प्रोत्साहित हत्या है। पुलिस का बंदोबस्त कहां था? चीख, पुकार और दर्द और क्रिकेट सितारों को देखने की दीवानगी एक ऐसा दर्दनाक एवं खौफनाक वाकया है जो सुदीर्घ काल तक पीड़ित और परेशान करेगा। प्रशासन की लापरवाही, अत्यधिक भीड़, निकासी मार्गों की कमी और अव्यवस्थित प्रबंधन ने इस त्रासदी को जन्म दिया। यह घटना कोई अपवाद नहीं है, बल्कि हाल के वर्षों में दुनिया भर में सामने आई ऐसी घटनाओं की कड़ी का नया खौफनाक मामला है, जहाँ भीड़ नियंत्रण में चूक एवं प्रशासन एवं सत्ता का जनता के प्रति उदासीनता का गंभीर परिणाम एवं त्रासदी का ज्वलंत उदाहरण है।

क्रिकेट की दुनिया के सबसे बड़े वार्षिक उत्सव इंडियन प्रीमियर लीग के फाइनल मुकाबले में रॉयल चैलेंजर्स बेंगलुरु ने 18वें संस्करण में आईपीएल खिताब जीत लिया। इस कामयाबी से आईपीएल से विदाई ले रहे विराट कोहली के प्रति जन-उत्साह उमड़ा। लेकिन इस जीत के जश्न की चमक में प्रशंसकों की चीखें एवं आहें का होना और उसे खिलाड़ियों एवं राजनेताओं का नजर-अंदाज करना, अमानवीयता की चरम पराकाष्ठा है। दुर्घटना होने एवं आम लोगों की मौतें हो जाने के बावजूद जश्न जारी रहना, दुखद एवं शर्मनाक है। प्रशंसकों की अहमियत को कमतर आंकने के इस दुर्भाग्यपूर्ण घटनाक्रम ने न केवल राजनेताओं को बल्कि खिलाड़ियों को भी दागी किया है। घटना ने एक बार फिर हमारे अवैज्ञानिक व लाठी भांजने वाले भीड़ प्रबंधन की ही पोल खोली है। इस जीत के जश्न में हिस्सा लेने आई भीड़ का एक लाख तक होने का अनुमान था। लेकिन लंबे अंतराल के बाद मिली जीत ने लोगों के उत्साह को इस स्तर तक पहुंचा दिया कि स्टेडियम के आसपास तीन लाख से अधिक लोगों की भीड़ जमा हो गई। खुद कर्नाटक के मुख्यमंत्री सिद्धारमैया का मौत की खबरें मिलने के बावजूद खिलाडियों के साथ जश्न मनाने में जुटा रहना उनकी प्रचार भूख का भौंडा उदाहरण है। जब मौत के बाद वहां पसरा मातम देखकर सब स्तब्ध थे तो सिद्धारमैया क्यों अपने पद की गरिमा एवं जिम्मेदारी को धूमिल कर रहे थे? सोचिए लोगों की मौत के बाद अगर एक मिनट भी जश्न मना, तालियां बजीं, ठहाके लगे, फ्लाइंग किस दिए गए तो इससे ज्यादा अमानवीयता और निर्दयता क्या हो सकती है? जब खुद सरकार एक जश्न का मातम में बदलने का नेतृत्व करेगी तो आम लोगों का कांप उठना स्वाभाविक है।

बहरहाल, आईपीएल का आयोजन लगातार नई ऊंचाइयों को छूता हुआ व्यावसायिक क्रिकेट को नई ऊंचाइयां देने में जरूर सफल रहा है। फटाफट क्रिकेट के दुनिया के सबसे बड़े उत्सव में भारत के दो सर्वकालिक महान खिलाड़ियों विराट कोहली व एमएस धोनी की प्रतिष्ठा दांव पर लगी थी। अंततः विराट कोहली का आईपीएल खिताब जीतने का लंबा इंतजार इस जीत के साथ खत्म हुआ। लेकिन धोनी पांच बार की विजेता चेन्नई सुपरकिंग को जीत का खिताब दिलाने से चूक गए। एक तरह से आईपीएल क्रिकेट से कोहली की यह शानदार विदाई साबित हुई। वे इस गरिमामय विदाई के हकदार भी थे। उनके करोड़ों प्रशंसकों की कतारे देख कर राजनेता भी उनकी साथ मंच सांझा करने को उत्सुक दिखे, कर्नाटक के मुख्यमंत्री सिद्धारमैया, अन्य मंत्री एवं प्रशासनिक अधिकारी भी इसी फिराक में अपनी जिम्मेदारियों को भूल जश्न मनाते रहे और आमजनता अव्यवस्थाओं के कारण मौत में समाती रही। यह ऐसी दुखद घटना है जो अपनी निर्दयता एवं क्रूरता के लिए लम्बे समय तक कौंधती रहेगी। सिद्धारमैया के इस घटना की तुलना प्रयागराज कुंभ में हुए हादसे के करना उनकी राजनीतिक अपरिपक्वता को ही दर्शा रही है।

भारत में भीड़ से जुड़े हादसे अनेक आम लोगों के जीवन का ग्रास बनते रहे हैं। धार्मिक आयोजनों हो या खेल प्रतियोगिता, राजनीतिक रैली हो या स-ंस्कृतिक उत्सव लाखों लोगों को आकर्षित करते हैं, जहाँ भीड़ प्रबंधन की मामूली चूक भयावह त्रासदी में बदलते हुए देखी जाती रही है। उदाहरण के लिये, वर्ष 2022 में दक्षिण कोरिया के इटावन हैलोवीन समारोह में अत्यधिक भीड़ के कारण 150 से अधिक लोगों की जान चली गई थी। इसी तरह, वर्ष 2015 में मक्का में हज के दौरान मची भगदड़ में सैकड़ों लोगों की मौत हो गई थी। वर्ष 2013 में मध्य प्रदेश के रत्नागढ़ मंदिर में ढाँचागत कमियों से प्रेरित

भगदड़ के कारण 115 लोगों की मौत हो गई थी। हालही में महाकुंभ के दौरान नई दिल्ली रेल्वे स्टेशन एवं प्रयागराज में हुए हादसे में भी अनेकों लोगों की जान गयी। आग, भूकंप, या आतंकी हमलों जैसी आपातकालीन स्थितियाँ में भी भीड़ प्रबंधन की पौल खुलती रही है। आखिर दुनिया के सर्वाधिक जनसंख्या वाले देश में हम भीड़ प्रबंधन को लेकर इतने उदासीन क्यों है? बड़े आयोजनों-भीड़ के आयोजनों में भीड़ बाधाओं को दूर करने के लिए, भीड़ प्रबंधन के लिए बुनियादी ढांचे में सुधार, सुरक्षाकर्मियों को पर्याप्त प्रशिक्षण प्रदान करना, जन जागरूकता बढ़ाना और आधुनिक तकनीकों का उपयोग करना अब नितान्त आवश्यक है।

रेलवे स्टेशन, मंदिर और अन्य सार्वजनिक स्थानों पर भीड़ को संभालने के लिए पर्याप्त जगह और रास्ते नहीं हैं। कुछ स्थानों पर निकास मार्ग सीमित हैं या अनुपयुक्त हैं, जो भगदड़ का खतरा बढ़ाते हैं। भीड़ प्रबंधन के लिए पर्याप्त प्रशिक्षित एवं दक्ष सुरक्षाकर्मी नहीं हैं, जिससे सुरक्षा चूक होने की संभावना बढ़ जाती है। भीड़ प्रबंधन के लिए आधुनिक तकनीकों, जैसे कि एआई आधारित निगरानी और ड्रोन कैमरे का उपयोग सीमित है। लोगों को आपातकालीन निकास मार्गों, भीड़ नियंत्रण नियमों, और सुरक्षा उपायों के बारे में पर्याप्त जानकारी नहीं है। गलत सूचना या अचानक दहशत से भीड़ अनियंत्रित हो सकती है और भगदड़ मच सकती है। भीड़ का व्यवहार कई बार अनियंत्रित हो जाता है, खास-ाकर धार्मिक, खेल एवं सिनेमा आयोजनों में, जहां लोग भावनाओं में बहकर आगे निकलने की होड़ में लग जाते हैं। कई बार आयोजनकताओं और पुलिस के बीच समन्वय की कमी होती है, जिससे सुरक्षा चूक हो सकती है। भीड़ प्रबंधन केवल विधि-व्यवस्था बनाए रखने का विषय नहीं है, बल्कि यह मानव जीवन की सुरक्षा, सार्वजनिक स्थानों की संरचना और आपातकालीन स्थितियों से निपटने की रणनीतियों से गहनता से संबद्ध है। दुर्भाग्यवश, कई बार आयोजकों और प्रशासनिक एजेंसियां पर्याप्त सुरक्षा उपाय नहीं कर पाते हैं, जिससे जानमाल की हानि होती है। इस परिदृश्य में, बड़े आयोजनों में भीड़ प्रबंधन की मौजूदा स्थिति, उससे जुड़ी प्रमुख चुनौतियां, हालिया घटनाओं से मिले सबक और प्रभावी समाधानों की चर्चा करना बेहद प्रासंगिक होगा, ताकि भविष्य में ऐसी त्रासदियों से बचा जा सके।

भारत जैसे विशाल जनसंख्या वाले देश में धार्मिक उत्सव, खेल आयोजनों और राजनीतिक रैलियों में लाखों लोग जुटते हैं। ऐसे आयोजनों के लिये पुलिस, होम गार्ड, राष्ट्रीय आपदा मोचन बल और अन्य सुरक्षा एजेंसियों को तैनात किया जाता है। विश्व के विभिन्न विकसित देशों में भीड़ प्रबंधन के लिये अत्याधुनिक तकनीकों का इस्तेमाल किया जाता है। जापान जैसे देशों में रेलवे स्टेशनों और सार्वजनिक स्थानों पर अत्यधिक भीड़ के प्रबंधन के लिये ऑटोमेटेड एंट्री और एग्जिट सिस्टम स्थापित किये गए हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका और यूरोपीय देशों में स्टेडियमों, एयरपोर्ट्स एवं धार्मिक स्थलों पर भीड़ नियंत्रण के लिये एआई आधारित कैमरे, आपातकालीन अलर्ट सिस्टम और प्रशिक्षित सुरक्षाकर्मी मौजूद रहते हैं। हालांकि भारत में बड़े आयोजनों के लिये प्रशासनिक तैयारियां की जाती हैं, फिर भी समय-समय पर कई कमियाँ उजागर होती रही हैं। लेकिन आरसीबी के चिन्नास्वामी स्टेडियम के जश्न के दौरान खामियां ही खामियां देखने को मिली। ऐसे बड़े आयोजनों में भीड़ प्रबंधन कोई आसान कार्य नहीं है। लाखों लोगों को नियंत्रित करने के लिये ठोस रणनीति, प्रशासनिक कौशल और अत्याधुनिक तकनीक की आवश्यकता होती है, जिसका इस आयोजन में सर्वथा अभाव रहा।

प्रदीप कुमार वर्मा
स्तंभकार

बिहार चुनाव में युवाओं के सिर ताज

देश और दुनिया में प्राचीन ज्ञान एवं शिक्षा के केंद्र नालंदा एवं विक्रमशिला विश्वविद्यालय के लिए चर्चित बिहार में बुजुर्गों की राजनीति के दिन अब पूरे होते दिख रहे हैं। राष्ट्रीय जनता दल के सुप्रीमो लालू प्रसाद यादव की बढ़ती उम्र और खराब स्वास्थ्य के चलते उनकी राजनीतिक सक्रियता अब ना के बराबर है। वहीं,समाजवादी आंदोलन से निकले दूसरे बड़े चेहरे रामविलास पासवान के पुत्र और केंद्रीय मंत्री चिराग पासवान की एंट्री भी अब बिहार के दंगल में हो गई है। इसी प्रकार वर्तमान मुख्यमंत्री नीतीश कुमार के भी बुजुर्ग तथा बीमार होने की बात कही जा रही है जिसके चलते भी अब उनके राजनीतिक वारिस की तलाश की जा रही है। ऐसे में बिहार की राजनीति से बुजुर्गों की विदाई तय है। साथ ही यह भी माना जा रहा है कि इस साल के आखिर में होने वाले बिहार विधानसभा चुनाव में राजनीति में युवाओं के रूप में नए चेहरों की ₹भागीदारी₹ महत्वपूर्ण रहेगी तथा बतौर मुख्यमंत्री किसी नए चेहरे के सिर पर सत्ता का ₹ताज₹ सज सकता है।

बिहार की सियासत की बात करें तो वर्तमान में बिहार में सक्रिय विभिन्न राजनीतिक दलों में इन दिनों पार्टी की कमान युवा चेहरों के हाथ है। चारा घोटाले में लालू यादव के सजायाफ्ता होने तथा उम्रदराज होने के बाद उनके पुत्र तेजस्वी यादव ने पार्टी की बागडोर संभाल रखी है। लालू यादव अब पार्टी में महज मार्गदर्शक की भूमिका में हैं। आज से करीब दस वर्ष पूर्व 2015 में ही राजनीति में तेजस्वी यादव की एंट्री हो गई थी। बीते बिहार विधानसभा के चुनाव के दौरान तेजस्वी यादव राजनीति की लाइमलाइट में आए थे। तब उन्होंने कांग्रेस सहित अन्य गैर भाजपाई दलों के साथ बिहार में महागठबंधन बना कर चुनाव लड़ा और खासी कामयाबी हासिल की। तब चुनावी राजनीति में पहली बार ही बेहतर प्रबंधन करते हुए तेजस्वी की अगुवाई में आरजेडी को 75 सीटें मिली थी। अब एक बार फिर बिहार विधानसभा चुनाव के लिए तेजस्वी की कमान में राष्ट्रीय जनता दल पूरी तरह तैयार है और उनके आक्रामक तेवर पार्टी कार्यकताओं में एक नया जोश भर रहे हैं।

इस साल की शुरूआत में ही जनता दल यूनाइटेड के नेताओं ने वर्तमान मुख्यमंत्री नितीश कुमार के चेहरे पर ही एक बार फिर से चुनाव लड़ने की बात छेड़कर गठबंधन की राजनीति को गर्मा दिया है। जनता दल यूनाइटेड का एक धड़ा नीतीश कुमार के पुत्र को राजनीति में लाने की बात कह रहा है। पेशे से इंजीनियर नीतीश कुमार के पुत्र निशांत कुमार सक्रिय राजनीति से अभी तक दूर ही रहते आए हैं। कई बार निशांत खुद भी इस बात का एलान कर चुके हैं कि वो कभी भी अपने पिता की तरह राजनीति में नहीं आएंगे। लेकिन राजनीति संभावनाओं का खेल है और बिहार की राजनीति के जानकार इस बात को मानते हैं कि देर सवेर-सही निशांत कुमार का सक्रिय राजनीति में प्रवेश होकर ही रहेगा। ऐसे में भाजपा एवं जनता दल यूनाइटेड सहित समूचा एनडीए निशांत कुमार को भावी युवा मुख्यमंत्री के तौर पर प्रस्तुत कर सकता है। उधर,बिहार की राजनीति में समाजवादी आंदोलन से निकले एक दूसरे कद्दावर नेता रामविलास पासवान साल 2019 में लोकसभा चुनाव के दौरान ही अपने पुत्र चिराग पासवान को सियासत में उतार चुके थे।

इस दौरान पार्टी के सारे फैसले चिराग ही लेते रहे। पिता रामविलास पासवान की मौत के बाद उनके चाचा पशुपति पारस ने धोखा दिया और चिराग अकेले पड़ गए। इसके बावजूद उन्होंने हिम्मत नहीं हारी। चिराग ने अपनी ताकत का एहसास 2020 के विधानसभा चुनाव में नीतीश कुमार को करा दिया। अब बदले हालात में अपने दम पर चिराग पासवान दो भागों में अब बंट चुकी लोजपा के एक धड़े लोजपा (राम विलास) का नेतृत्व कर रहे हैं। खुद को प्रधानमंत्री

नरेंद्र मोदी का हनुमान बताने वाले चिराग पासवान ने 'बिहार एवं बिहारी फर्स्ट' का नारा एक बार दोहराते हुए बिहार विधानसभा में चुनाव लड़ने की बात कही है। बिहार के दंगल में चिराग पासवान की एंट्री से विधानसभा चुनाव में बिहार में खुद की अगुवाई में अपनी पार्टी के विस्तार के साथ-साथ अपनी प्रभावी मौजूदगी दर्ज करने की कोशिश चिराग की रहेगी।

बिहार में महागठबंधन में शामिल कांग्रेस अपने स्वतंत्र अस्तित्व के बजाय महागठबंधन के जरिए ही कांग्रेस अपनी उपस्थिति दर्ज कर रही है। वर्ष 2019 में सीपीआई से कांग्रेस में गए कन्हैया कुमार इन दोनों बिहार में कांग्रेस के पोस्टर बॉय हैं। कन्हैया मूल रूप से बिहार के बेगूसराय के रहने वाले हैं तथा जेएनयू छात्र संघ के वे अध्यक्ष भी रह चुके हैं। नयी सोच के साथ बिहार को आगे बढ़ाने में कन्हैया की भूमिका हो सकती है। कांग्रेस ने बिहार में जो सांगठनिक बदलाव किए हैं, वह कन्हैया कुमार के अनुकूल है तथा इस लगता है कि कांग्रेस बिहार में अपने पारंपरिक वोट बैंक की ओर लौट रही है और सवर्णों को एक बार फिर तरजीह देने की कांग्रेस ने योजना बनाई है। कन्हैया कुमार भी सवर्ण भूमिहार हैं। और कन्हैया कुमार की दमपरी कांग्रेस अब बिहार के चुनावी महाभारत में जीत का परचम लहराना चाहती है। बिहार विधानसभा चुनाव की कवायद में चुनावी रणनीतिकार से पॉलिटिशियन बने प्रशांत किशोर उर्फ पीके बिहार में वैकल्पिक राजनीति की जमीन तैयार करने में जुटे हैं।

एक कुशल रणनीतिकार के तौर पर उन्होंने ममता बनर्जी और नीतीश कुमार के लिए काम किया तथा दोनों को चुनावी सफलता भी दिलाई। पीके ने पिछले साल गांधी जयंती पर दो अक्टूबर से वैकल्पिक राजनीति पर काम करना शुरू किया। उनकी नजर में बीते तीन दशक में बिहार पिछड़ेपन का शिकार हुआ है तथा बिहार कैसे आगे बढ़ सकता है, इसका उपाय बताने वे गांव-गांव घूम चुके हैं। पहले ही साल में पीके को कामयाबी मिली, जब सारण सुरक्षित निर्वाचन क्षेत्र से जन सुराज का समर्थित उम्मीदवार एमएलसी का चुनाव जीत गया। एक समय था जब राजनीति में बुजुर्गों को परिपक्वता की नजरों से देखा जाता था तथा बुजुर्ग राजनीतिज्ञों का अनुभव उनकी योग्यता का पैमाना था। लेकिन बदलते वक्त के साथ अब सियासी चलन बदल रहे हैं। हाल के दिनों में दिनों में भी पीके ने बिहार लोक सेवा आयोग के पेपर लीक के बाद में परीक्षा को रद्द करने की मांग को लेकर हुए युवाओं के आंदोलन की अगुवाई भी की थी।

राजनीति में बुजुर्गों की विदाई तथा युवा पीढ़ी को अधिक मौके देने वाली इस कवायद में सबसे पहले भाजपा ने इस बदलाव की शुरूआत की थी। भाजपा ने 75 साल के पॉलिटिशियन को रिटायर करने की इस कवायद में लालकृष्ण आडवाणी एवं मुरली मनोहर जोशी जैसे नेताओं को ₹मार्गदर्शक मंडल₹ में भेज दिया गया। हाल के दिनों में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी द्वारा एक लाख युवाओं को राजनीति में लाने के आह्वान किया गया था। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी का यही 'राजनीतिक आह्वान' का आगाज बिहार विधानसभा चुनाव से ही अमल में आ सकता है। इसके साथ ही मोदी और शाह की जोड़ी किसी नए ₹युवा चेहरे₹ को अब अप्रत्याशित रूप से भी पार्टी का चेहरा बनाकर पेश कर सकती हैं। भाजपा गठबंधन की ओर से यह नया चेहरा चिराग पासवान अथवा सम्राट चौधरी का भी हो सकता है। यही वजह है कि अब राजनीति में पीढ़ीगत बदलाव का यह दौर अब बिहार के विधानसभा चुनाव में भी दिखाई दे सकता है, और किसी युवा के सिर पर बिहार की सत्ता का ताज सज सकता है,इस बात के पूरे आसार बन रहे हैं।

प्रो. सुरेंद्र दुबे
स्तंभकार

मां के समान है मातृभाषा

राष्ट्रीय शिक्षा नीति के अनुसरण में शैक्षणिक सत्र 2025-26 से पूर्व प्राथमिक से पांचवीं कक्षा तक मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम बनाने की पहल कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। मातृभाषा में शिक्षा मिलने से बच्चा आसानी से विषय को समझ पाता है। उसका आत्मविश्वास बढ़ता है। इस तरह मातृभाषा में प्राथमिक शिक्षा बच्चे के बौद्धिक विकास में सहायक होती है। मातृभाषा प्राथमिक शिक्षा का स्वाभाविक और सर्वाधिक समर्थ माध्यम है। बच्चे चूंकि मातृभाषा अथवा घर में बोली जाने वाली भाषा जल्द से जल्द सीख लेते हैं इसलिए शिक्षा के माध्यम को परिचित भाषा में ढालने में सहायता मिलती है और भाषा शिक्षण की पद्धति को वैज्ञानिक ढंग से लागू करने की राह सुगम होती है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के अनुसरण में राष्ट्रीय पाठ्यचर्या ढांचा की सिफारिश के अनुसार कक्षा एक से पांच तक बच्चा अपनी मातृभाषा में पढ़ाई करेगा। इस दौरान वह अपनी पसंद के मुताबिक एक दूसरी भाषा भी पढ़ेगा। जब वह छठी कक्षा में जाएगा तो वह तीसरी भाषा पढ़ेगा। बुनियादी चरण में यानी पूर्व प्राथमिक से दूसरी कक्षा और आयु की दृष्टि से तीन से आठ वर्ष में पढ़ाई मातृभाषा में होनी है। इस चरण में बच्चे पहली भाषा यानी मातृभाषा में पढ़ना लिखना समझना सीखेंगे। दूसरी भाषा को महज मौखिक रूप से बच्चों से परिचित कराया जाना है। तीसरी से पांचवीं कक्षा की आयु यानी करीब 11 वर्ष तक के बच्चे दूसरे विषयों की पढ़ाई भी मातृभाषा में करेंगे। यदि छात्र मौखिक भाषा (दूसरी भाषा) में पर्याप्त दक्षता प्राप्त कर लेते हैं तो उन्हें परिवर्तन की अनुमति दी जा सकती है।

एक बहुभाषिक देश होने के कारण भारत में भाषा-प्रयोग की दृष्टि से एक बड़ी चुनौती यह है कि ऐसी कई भाषाएं हैं जिनकी कोई अपनी लिपि नहीं है और वे अभी भी मौखिक रूप में ही प्रचलित हैं। इसीलिए जहां मातृभाषा में लेखन की परंपरा न हो, जहां कक्षा में भाषाई विविधता हो, वहां राष्ट्रीय शिक्षा नीति में परिवर्तन की छूट दी गई है। इससे मातृभाषा और बहुभाषावाद दोनों को बढ़ावा मिलेगा। इसे ध्यान में रखने की जरूरत है कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति भाषाओं को एक-दूसरे की किसी प्रतिद्वंद्विता में नहीं रखती, न वह उन्हें बांधती या रोकती ही है। वह उन्हें अपने विकास के लिए मुक्त करती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में एक ऐसे राष्ट्र की कल्पना की गई है, जहां बहुभाषावाद का न केवल स्वागत किया जाएगा, बल्कि सीखने की क्षमता को बढ़ाने के लिए इसका लाभ उठाया जाएगा। राष्ट्रीय शिक्षा नीति एक सकारात्मक दृष्टिकोण के साथ सहज, स्वाभाविक और नैसर्गिक प्रक्रिया के तहत दूसरी भाषाएं भी सीखने-सिखाने की सुविधा देती है।

भारत एक बहुभाषी राष्ट्र है। संविधान की आठवीं

अनुसूची में अभिलिखित 22 भाषाओं के अतिरिक्त कई अन्य भाषाएं भी हैं। भारत सरकार ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में भारत की अनेकानेक मातृभाषाओं में स्कूली शिक्षा का जो विकल्प दिया है, उसे पूरा करने की दृष्टि से केंद्रीय शिक्षा मंत्री धर्मेंद्र प्रधान द्वारा हाल में जारी किए गए भारतीय भाषाओं में प्राइमर और तेरह भाषाओं में विशेष मॉड्यूल बेहद उपयोगी होंगे। अब तक 13 भाषाओं में प्राइमर तैयार किए जा चुके हैं, जिनमें कश्मीरी (फारसी-अरबी), सिंधी (देवनागरी), सिंधी (फारसी-अरबी), कश्मीरी (देवनागरी), बाल्टी, संताली, जेमी, उर्दू, संगतम, लाई (पावी), गोंडी-तेलुगू, भीली (वागड़ी) और चोकरी शामिल हैं। कुल प्राइमर की संख्या 117 हो गई है। भारतीय भाषाओं में ये प्राइमर केंद्रीय भारतीय भाषा संस्थान (सीआईआईएल) और राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद (एनसीईआरटी) द्वारा विकसित किए गए हैं।

117 भारतीय भाषाओं में विकसित प्राइमर का उद्दे श्य शिक्षार्थी की मूल भाषा में संदर्भ-समृद्ध सामग्रियों के माध्यम से प्रारंभिक स्तर पर पढ़ने और लिखने की सुविधा प्रदान करना, कम उम्र से भाषा के साथ भावनात्मक और सांस्कृतिक संबंध को बढ़ावा देना और संज्ञानात्मक विकास और सामाजिक एकीकरण के आधार के रूप में बहुभाषा सीखने की सुविधा देना है। छोटे बच्चों के लिए, ये प्राइमर भविष्य की शिक्षा और संज्ञानात्मक विकास के लिए एक मजबूत आधार प्रदान करते हैं।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने मातृभाषा में शिक्षा का अवसर देकर महात्मा गांधी के सपने को भी पूरा किया है। गांधी जी ने 'हरिजन' के 09-07-1938 के अंक में मातृभाषा में स्कूली जीवन में शिक्षा नहीं दिए जाने के नुकसान का विवरण दिया है और लिखा है कि गणित, रसायनशास्त्र और ज्योतिष सीखने में उन्हें चार साल लगे, उतना उन्होंने एक ही साल में आसानी से सीख लिया होता, अगर अंग्रेजी के बजाय उन्हें गुजराती में पढ़ा होता। उस हालत में आसानी और स्पष्टता के साथ इन विषयों को वे समझ लेते। गुजराती का उनका शब्द ज्ञान कहीं ज्यादा समृद्ध हो गया होता और उस ज्ञान का उन्होंने अपने घर में उपयोग किया हाता। स्कूली जीवन के स्वयं के अनुभव से गांधीजी इस निष्कर्ष पर पहुंचे थे कि हर तरह की शिक्षा मातृभाषा में ही उत्तम ढंग से दी जा सकती है। गांधी जी मातृभाषा को मां के दूध के बराबर मानते थे। उन्होंने कहा था, ह्यमातृभाषा मनुष्य के मानसिक विकास के लिए उसी प्रकार स्वाभाविक है, जिस प्रकार मां का दूध शिशु के शरीर के विकास के लिए। शिशु अपना पहला पाठ मां से सीखता है। इसलिए बच्चों के मानसिक विकास के लिए उनके ऊपर मातृभाषा के अलावा कोई और भाषा थोपना मैं मातृभूमि के लिए पापाचार समझता ह-ूं।'

गांधी जी के विचारों के आईने में राष्ट्रीय शिक्षा नीति मातृभाषा में पर्यावरण, जीवन कौशल, मानव अधिकार की शिक्षा देने पर भी बल देती है, वहीं प्रौद्योगिकी के कारण ज्ञानार्जन के तौर तरीकों में आ रहे परिवर्तनों पर भी उसका ध्यान है। वाचिक से लिखित होते हुए डिजिटल संसार में कृत्रिम बुद्धिमत्ता का कैसे उपयोग हो, इसका भी उसमें प्रावधान है।

हम उम्मीद कर सकते हैं कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति के क्रियान्वयन से बच्चे खेल-खेल में कविताएं कंठस्थ करेंगे। गिनती और पहाड़ा सीखेंगे। बुनियादी अभिवादन, भाव, अक्षर, संख्याएं सीखेंगे। वे विभिन्न वाद्ययंत्रों की पहचान करना सीखेंगे। मसालों, सब्जियों और फलों के नाम भी सीखेंगे। श्रवण कौशल को बढ़ाएंगे। विभिन्न क्षेत्रों के राष्ट्रीय नायकों के बारे में जानेंगे। भौतिक मानचित्रों के माध्यम से नदियों, पहाड़ों और ऐतिहासिक स्मारकों के बारे में जानेंगे और और अपने परिवेश, समुदाय तथा देश के साथ रागात्मक संबंध महसूस करेंगे।

(लेखक साहित्यकार एवं केंद्रीय हिंदी शिक्षण मंडल के उपाध्यक्ष हैं।)

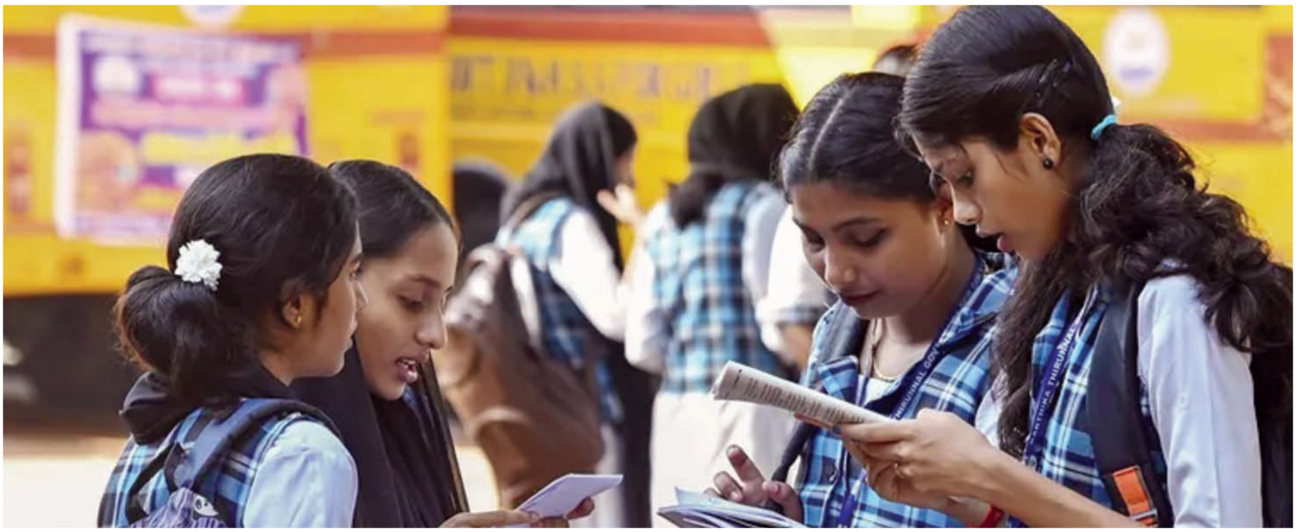

अजित बालकृष्णन
स्तंभकार

तकनीकी क्रांतियों के पीछे का सच

मेरे जीवन में निरंतर चले आ रहे रहस्यों में से एक यह समझने की कोशिश भी रही है कि आखिर इंगलैंड में 18वीं सदी के मध्य में आरंभ हुई औद्योगिक क्रांति, जिसने कताई और बुनाई की मशीनों की शुरूआत की, वह पहले भारत में क्यों नहीं घटित हुई। आखिर भारत उस समय दुनिया में सबसे अधिक कपास के धागे और कपड़े तैयार कर रहा था। मैं जब भी यह सवाल करता हूं तो मुझे उत्तर मिलता है, 'भारत में श्रम की लागत इतनी कम थी कि किसी ने कताई या बुनाई के लिए मशीनों का अविष्कार करने के बारे में सोचा ही नहीं।'

औद्योगिक क्रांति शब्द को ब्रिटिश आर्थिक इतिहासकार अर्नोल्ड टॉयनबी ने 1882 में ऑक्सफर्ड विश्वविद्यालय में एक व्याख्यान में इस्तेमाल किया था। और यह बताया था कि कैसे कताई और बुनाई की मशीनों ने इंगलैंड को पूरी तरह से बदल दिया। उनकी बदौलत घरेलू स्तर पर होने वाले उत्पादन में भारी बदलाव आया। घरों और छोटी वर्कशॉप में होने वाला काम अब कारखानों में होने लगा। यहां मशीनों के जरिए व्यवस्थित ढंग से बहुत बड़े पैमाने पर उत्पादन होता था।

उन्होंने 'क्रांति' शब्द का इस्तेमाल किया, क्योंकि उन्होंने देखा कि इससे बहुत तेज और भारी बदलाव आया था,ा जिसने समाज को उसी तरह बदल दिया जैसे कि कोई महत्त्वपूर्ण राजनीतिक क्रांति करती है। दूसरे शब्दों में उन्होंने कहा कि केवल मशीनों के इस्तेमाल ने ही नहीं बल्कि आर्थिक, सामाजिक और मानवीय रिश्तों के बुनियादी पुनर्गठन ने इसे एक 'क्रांति' में बदल

दिया।

काश मैं उस समय श्रोताओं के बीच होता तो खड़ा होकर कहता, 'आप ब्रिटेन की बहुत अच्छी मार्केटिंग कर रहे हैं श्रीमान टॉयनबी।' प्रिय पाठको, इससे पहले कि आप सोचें कि मैं इतना बगावती क्यों हूं, कुछ तथ्यों पर ध्यान दीजिए।

यह एक व्यापक मान्यता है कि ब्रिटेन के सूती कपड़ा विनिर्माता इन मशीनों का इस्तेमाल किए जाने से इतना किफायती कपड़ा तैयार करने लगे, जिसके चलते न केवल वे भारत से सूती वस्त्र का आयात पूरी तरह रोक सके बल्कि वे भारत के कताई-बुनाई उद्योग को पूरी तरह नष्ट करने में भी कामयाब रहे।

बहरहाल एक सच जिसका जिक्र इस कहानी में नहीं किया जाता वह यह है कि मैनचेस्टर के कताई-बुनाई कारोबार को फलने-फूलने के लिए ब्रिटिश सरकार ने सन 1700 में कानून पारित किए। और आयात शुल्क को बेतहाशा बढ़ा दिया। भारत से आने वाले सूती वस्त्र पर उनके प्रकार के हिसाब से 15 से लेकर 75 फीसदी तक आयात कर लगाया गया। इस कपड़े को वहां कैलिको कहा जाता था, क्योंकि उसे केरल के कालीकट बंदरगाह से ब्रिटेन भेजा जाता था। चूंकि इससे मांग कम करने को लेकर वांछित असर नहीं पड़ा, तो 1720 में दूसरा कानून पारित किया गया ताकि भारत सूती वस्त्र आयात पर पूरी तरह प्रतिबंधित किया जा सके।

इस कानून में यह प्रावधान भी था कि आयातित सूती कपड़े पहनने वाले लोगों पर 15 पाउंड तक का जुर्माना लगाया जा सकता है। और ऐसे कपड़े रखने अथवा बेचने वालों पर 200 पाउंड तक के जुर्माने का प्रावधान था। जब ये प्रावधान भी नाकाम रहे तब ब्रिटिश बुनकरों ने कैलिको पहनने वाली महिलाओं पर हमले करके विरोध जताया, उन्होंने उनके कपड़े फाड़े और यहां तक कि उन पर तेजाब भी फेंका गया।

शायद औद्योगिक क्रांति की कहानी के पीछे का सबसे सावधानी से छिपाया गया तथ्य यह है कि आखिर किस बात ने ब्रिटिश सूती वस्त्र निमार्ताओं को भारतीय हथकरघा बुनकरों पर अंतिम बढ़त प्रदान की। सन 1800 के आसपास ब्रिटेन अपना अधिकांश कपास अमेरिका के दक्षिण से आयात करता था, जिसे हजारों दास अफ्रीकियों की बदौलत एक विशाल बंधुआ मजदूर शिविर में बदल दिया गया था। ये दास अकल्पनीय रूप से कम कीमत पर कच्चा कपास बहुत भारी मात्रा में उपलब्ध कराते थे।

एक बार जब मुझे ये तथ्य पता चल गए तो मैं गहरे अवसाद का शिकार हो गयाः क्या यह संभव है कि मानवता ऐसे तथ्यों की अनदेखी करती रहे और पिछले 200 से अधिक वर्षों से यह मानती आ रही हो कि 'औद्योगिक क्रांति' जैसे जुमले का इस्तेमाल उन कार्यों को उचित ठहराने के लिए किया जा सकता है, जो वास्तव में 'औपनिवेशिक शोषण' था? 'तकनीक आधारित विकास' या 'तकनीकी क्रांति' जैसे जुमले तो और भी चिंतित करने वाले हैं। इनका इस्तेमाल उन कदमों के लिए किया गया जो वास्तव में विभिन्न पहलों का मिश्रण थे और जिनमें तकनीक की हिस्सेदारी बेहद कम थी।

दूसरे शब्दों में कहें तो क्या हमें उन कई 'तकनीकी क्रांतियों' के पुनर्पर-ीक्षण की जरूरत है जिन्हें हम अब तक राजनीतिक अर्थव्यवस्था के नजरिए से देखते आए थे? कहने का तात्पर्य यह है कि हमें केवल इंजीनियरिंग के लिहाज से ही नहीं, अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र और समाजशास्त्र के नजरिए से अलग साधनों और तरीकों का इस्तेमाल कर उन तमाम तकनीकी क्रांतियों का पुनर्परीक्षण करना होगा, जिनके बारे में हम सभी मानते हैं कि वे घटित हुई हैं।

पहली औद्योगिक क्रांति (18वीं-19वीं सदी) ने भाप से चलने वाली मशीनें दीं, जिन्होंने हाथ से होने वाले उत्पादन की जगह ली। दूसरी औद्योगिक क्रांति (19वीं सदी का अंत और 20वीं सदी) ने बिजली और व्यापक उत्पादन की तकनीक मसलन असेंबली लाइन आदि तैयार कीं। तीसरी औद्योगिक क्रांति जिसे डिजिटल क्रांति कहा जाता है, उसने कारखानों में स्वचालन और एकीकृत व्यवस्था के लिए उन्हें कंप्यूटरों और इंटरनेट से जोड़ा। चौथी औद्योगिक क्रांति (उद्योग 4.0) का संबंध आर्टिफिशल इंटेलिजेंस और रोबोटिक्स से है। ये एक साथ मिलकर साझा संपर्क और मेधा के क्षेत्र में काम करते हैं। अब पांचवीं औद्योगिक क्रांति उभर रही है।

शायद अब वक्त आ गया है कि महात्मा गांधी की ओर लौटें और उस बात पर ध्यान दें जो उन्होंने स्वराज आंदोलन के समय कही थी, 'उनका जोर श्रम की बचत करने वाली मशीनरी पर है। लोग तब तक श्रम की बचत करेंगे जब तक कि हजारों लोग बेकार नहीं हो जाते और सड़कों पर भूख से मरने के लिए नहीं फेंक दिए जाते। मैं समय और श्रम बचाना चाहता हूं, मानव जाति के कुछ हिस्से के लिए नहीं बल्कि सभी के लिए। मैं चाहता हूं कि धन का केंद्रीकरण कुछ लोगों के हाथ में न हो बल्कि सभी के पास धन हो।

आज मशीनरी केवल कुछ लोगों की सहायता करती है ताकि वे लाखों लोगों पर शासन कर सकें लेकिन इसके पीछे की प्रेरणा परोपकार नहीं बल्कि लालच है। ऐसा नहीं है कि हमें मशीनरी नहीं चाहिए, लेकिन हम इसे इसके उचित स्थान पर चाहते हैं। जब तक इसे सरल नहीं बनाया जाता है और सभी के लिए उपलब्ध नहीं कराया जाता, तब तक यह हमारे पास नहीं होगी।'

क्या यही वह अगला आंदोलन है, जिसे हमें अपनाना चाहिए और जो शायद आज के दिनों में उतना ही अहम हो सकता है जितना कि गांधी के दौर में स्वराज आंदोलन था।

(लेखक तकनीक और समाज के बीच अध्ययन संपर्क समर्पित हैं)

दीप्ति अंगरीश
स्तंभकार

राजनीतिक राय में बड़े अंतर का भारत सहित कई देशों में दिख रहा नया ट्रेंड

जेन-जी के बीच राजनीतिक सोच का यह लैंगिक विभाजन अब केवल विचारों तक सीमित नहीं है, बल्कि यह चुनावी फैसलों, सामाजिक दृष्टिकोण और नीति निर्धारण को भी प्रभावित कर रहा है। जहां एक ओर युवा महिलाएं समानता और समावेशिता की ओर झुकाव रखती हैं, वहीं कई युवा पुरुष खुद को हाशिए पर महसूस करते हुए परंपरागत और प्रतिरोधी राजनीति की ओर बढ़ रहे हैं। अगर यह रुझान यूं ही जारी रहा, तो यह निश्चित रूप से भविष्य की राजनीति का चेहरा बदल सकता है।

राजनीति में अब केवल पीढ़ियों के बीच का फर्क नहीं, बल्कि जेनरेशन-जेड के भीतर भी बड़ा वैचारिक अंतर सामने आ रहा है। खासकर लड़के और लड़कियों के बीच राजनीतिक सोच में बड़ा अंतर देखा जा रहा है, जो न सिर्फ लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं बल्कि समाज की दिशा को भी प्रभावित कर रहा है।

1995 के बाद जन्मे युवाओं को जेन-जी माना जाता है। हाल के चुनावों में देखा गया है कि इस पीढ़ी के युवाओं की राजनीतिक सोच में तीव्र लैंगिक विभाजन उभर रहा है। जहां लड़कों का झुकाव दक्षिणपंथी विचारधाराओं की ओर है, वहीं लड़कियां अधिकतर वामपंथी सोच का समर्थन कर रही हैं। यह ट्रेंड केवल भारत में ही नहीं, बल्कि अमेरिका, यूरोप और दक्षिण कोरिया जैसे देशों में भी देखा जा रहा है।

विशेषज्ञों का मानना है कि युवा पुरुष खुद को सामाजिक-आर्थिक रूप से हाशिए पर महसूस करते हैं और विविधता की नीतियों को इसके लिए जिम्मेदार मानते हैं। इसके उलट, युवा महिलाएं समानता के बढ़ते अवसरों को प्रगति के रूप में देखती हैं और लैंगिक बराबरी के सवालों को प्रमुख मानती हैं।

भारत में यह अंतर अभी पश्चिमी देशों जितना गहरा नहीं है। 'द हिंदू' में छपे सीएसडीएस-लोकनीति के 2024 पोस्ट-पोल सर्वे के अनुसार, 37% पुरुषों और 36% महिलाओं ने भाजपा को वोट दिया, जबकि कांग्रेस को 22% महिलाओं और 21% पुरुषों ने समर्थन दिया। यह आंकड़े दिखाते हैं कि भारत में अभी लैंगिक ध्रुवीकरण सीमित है, लेकिन भविष्य में इसमें बढ़ोतरी के संकेत मिल रहे हैं।

2016 के एक सर्वेक्षण के अनुसार, शहरी युवा पुरुषों में 81% राजनीति में रुचि रखते हैं, जबकि महिलाओं में यह संख्या केवल 46% है। शिक्षा स्तर बढ़ने के साथ यह अंतर और गहराता है। अधिक शिक्षित महिलाओं में राजनीतिक मुद्दों पर 'कोई राय नहीं' रखने की प्रवृत्ति देखी गई।

24 वर्षीय राहुल (बदला हुआ नाम), बीएचयू से पोस्टग्रेजुएट हैं। उनका कहना है कि वे बीजेपी को अंतरराष्ट्रीय मंच पर मजबूत मानते हैं और इसलिए समर्थन करते हैं। दूसरी ओर, 25 वर्षीय भूमि (बदला हुआ नाम), जेएनयू की छात्रा होते हुए भी दक्षिणपंथी सोच की समर्थक हैं। उनका मानना है कि वामपंथ केवल 'बराबरी की बातें' करता है, पर जमीन पर प्रभाव नहीं दिखता।

वहीं, रीती (बदला हुआ नाम), जो वामपंथी सोच से जुड़ी हैं, कहती हैं कि वे जाति और धर्म आधारित राजनीति से दूरी बनाकर नीति आधारित मतदान करती हैं।

दक्षिण कोरिया के आगामी चुनावों में भी ऐसा ही परिदृश्य देखने को मिल रहा है, जहां युवा महिलाएं रूढ़िवादी पार्टियों के खिलाफ मतदान की तैयारी में हैं। कोविड से पहले तक दोनों ही वर्ग प्रगतिशील पार्टियों को समर्थन करते थे, पर अब युवा पुरुष दक्षिणपंथ की ओर बढ़ रहे हैं। ली जियोंग-मिन जैसे युवा पहली बार वोट दे रहे हैं और उन्होंने दक्षिणपंथी रिफॉर्म पार्टी के उम्मीदवार को समर्थन देने की घोषणा की है।

दुनिया भर में जेन-जी की राजनीतिक सोच में लैंगिक अंतर तेजी से उभर रहा है। यह न केवल भविष्य की लोकतांत्रिक राजनीति को आकार देगा, बल्कि नीति-निर्माण, रोजगार और सामाजिक संरचना को भी प्रभावित करेगा। भारत में इस बदलाव की गति धीमी है, लेकिन चेतावनी स्पष्ट है–राजनीति अब केवल विचारधाराओं का नहीं, बल्कि लिंग के नजरिए का भी युद्ध बनती जा रही है।

2024 के अमेरिकी राष्ट्रपति चुनावों में डोनाल्ड ट्रंप ने निर्माण क्षेत्र को पुनर्जीवित करने और विविधता कार्यक्रमों पर निशाना साधते हुए खासतौर पर युवा श्वेत और हिस्पानियाई पुरुषों को अपनी ओर आकर्षित करने की रणनीति अपनाई। इस रणनीति का परिणाम यह हुआ कि युवा महिलाओं से उनकी दूरी और बढ़ गई, जिससे पहले से मौजूद लिंग आधारित राजनीतिक खाई और गहरी हो गई।

आंकड़ों की मानें तो 18 से 29 वर्ष के लगभग 50 फीसदी पुरुषों ने ट्रंप को वोट दिया, जबकि 61 फीसदी युवा महिलाओं ने उनकी प्रतिद्वंद्वी, कमला हैरिस को समर्थन दिया। खास बात यह रही कि युवा ब्लैक मतदाताओं–चाहे पुरुष हों या महिलाएं–ने बड़े पैमाने पर कमला हैरिस का समर्थन किया।

इस महीने ऑस्ट्रेलिया में हुए चुनावों में जेन-जी के बीच ऐसा लिंग आधारित विभाजन सामने नहीं आया। वहां चुनावों में किसी बड़े मतभेद का संकेत नहीं मिला। विशेषज्ञों के अनुसार, इसका एक अहम कारण ऑस्ट्रेलिया में अनिवार्य मतदान प्रणाली हो सकती है।

ऑस्ट्रेलियन नेशनल यूनिवर्सिटी के राजनीतिक विश्लेषक इंतिफार चौधरी का मानना है कि 'अनिवार्य मतदान अक्सर चरमपंथी विचारों और ध्रुवीकरण को नियंत्रित कर देता है।' इस कारण सभी वर्गों के मतदाताओं की सहभागिता होती है और कोई एक पक्ष बहुत अधिक प्रभावशाली नहीं बन पाता।

राजनीतिक विश्लेषकों की मानें तो यदि सरकारें युवा पीढ़ी की मूल समस्याओं–जैसे घरों की बढ़ती कीमतें, अस्थिर नौकरियों और युवा पुरुषों के मानसिक स्वास्थ्य से जुड़ी चुनौतियों–को गंभीरता से नहीं लेतीं, तो यह लिंग आधारित राजनीतिक संघर्ष और लंबा खिंच सकता है।

विशेषज्ञों का यह भी मानना है कि युवा पुरुषों में बढ़ती आत्महत्या की दर अब एक गंभीर नीति संकट बन चुकी है। अगर इस ओर तत्काल ध्यान नहीं दिया गया तो यह केवल राजनीति में नहीं, बल्कि समाज के ताने-बाने में भी दरारें डाल सकता है।

जेन-जी के बीच राजनीतिक सोच का यह लैंगिक विभाजन अब केवल विचारों तक सीमित नहीं है, बल्कि यह चुनावी फैसलों, सामाजिक दृष्टिकोण और नीति निर्धारण को भी प्रभावित कर रहा है। जहां एक ओर युवा महिलाएं समानता और समावेशिता की ओर झुकाव रखती हैं, वहीं कई युवा पुरुष खुद को हाशिए पर महसूस करते हुए परंपरागत और प्रतिरोधी राजनीति की ओर बढ़ रहे हैं। अगर यह रुझान यूं ही जारी रहा, तो यह निश्चित रूप से भविष्य की राजनीति का चेहरा बदल सकता है।

हजारी प्रसाद द्विवेदी के प्रिय शिष्य डॉ विश्वनाथ त्रिपाठी को आचार्य हाशमी स्मृति पुरस्कार–2025

31 मई की संध्या डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी को उनके आवास पर आचार्य हाशमी स्मृति पुरस्कार- 2025 प्रदान किया गया। यह पुरस्कार देश की गंगा जमुनी तहज़ीब को समर्पित संस्था आचार्य हाशमी सौहार्द मंच के तत्वाधान में प्रदान किया गया। डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी देश के चर्चित और नामवर साहित्यकार के साथ-साथ बेहतरीन आलोचक और बेहतरीन मिलनसार इंसान के तौर पर जाने जाते हैं।

डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी को आचार्य हाशमी स्मृति पुरस्कार- 2025 के तहत शॉल, शील्ड, प्रशस्ति-पत्र एवं 2100 रुपए की नगद राशि प्रदान की गई। यह पुरस्कार आचार्य हाशमी सौहार्द मंच के अध्यक्ष एवं दूसरा मत के संपादक ए आर आज़ाद ने प्रदान किया। इस अवसर पर जामिया मिलिया इस्लामिया के हिन्दी विभागाध्यक्ष प्रोफ़ेसर नीरज, दिल्ली विश्वविद्यालय के वरिष्ठ प्रोफ़ेसर अनिल राय, मेघ देवता के लेखक सैयद असद आज़ाद एवं किरोड़ी मल कॉलेज के ओम भी ऐतिहासिक क्षण के साक्षी रहे।

पुरस्कार का यह क्षण यादगार समारोह बन कर रह गया। डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी ने पुरस्कार के बाद दिल खोलकर कई विषयों पर चर्चा की। और मौजूद लोगों का मन मोह लिया। उन्होंने कई दुलर्भ वाक़या सुनाया। उन्होंने पुरस्कार के बाद अपने संबोधन में कहा कि आचार्य हाशमी स्मृति पुरस्कार पाकर मैं गौरवान्वित महसूस कर रहा हूं। हमें बेहद ख़ुशी हुई है। यह हमारे लिए गौरव की बात है। और ख़ासकर यह पुरस्कार सांप्रदायिक सौहार्द को समर्पित है, इसलिए यह और भी गौरव की बात है।

मालूम हो कि आचार्य हाशमी स्मृति पुरस्कार-2025 से पहले डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी को कई अहम पुरस्कार प्राप्त हो चुके हैं। इन्हें अब तक

साहित्य अकादेमी का भाषा सम्मान और हिन्दी अकादमी का साहित्य सम्मान मिल चुका है। इसके अलावा व्यास सम्मान, मूर्तिदेवी पुरस्कार, भारत भारती पुरस्कार, मैथिलीशरण गुप्त सम्मान, डॉ. रामविलास शर्मा सम्मान, शमशेर सम्मान, शान्तिकुमारी वाजपेयी सम्मान, गोकुलचंद्र शुक्ल आलोचना पुरस्कार एवं सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार प्राप्त हो चुका है। इन्होंने अबतक विभिन्न महत्वपूर्ण विधाओं पर लगभग दो दर्जन किताबें लिखी हैं। इन पर कई विद्यार्थियों ने शोध किए हैं। और इनकी पुस्तकें कई विश्वविद्यालयों में शामिल हैं।

पुरस्कार के बाद दूसरा मत के संपादक को दिए गए साक्षात्कार में कई महत्वपूर्ण सवालों का जवाब दिया। और कहा कि मनुष्य को कभी शिकायत नहीं करनी चाहिए। आदमी को नाशुक्रा नहीं होना चाहिए। आदमी को कोई ऐसा काम नहीं करना चाहिए, जिससे कभी शर्मिंदा होना पड़े। लेकिन कई ऐसे क्षेत्र हैं, जहां कभी-कभार आदमी को शर्मिंदा भी होना पड़ता है। लेकिन इससे बचना चाहिए।

उन्होंने अपनी व्यक्तिगत लालसा के प्रश्न के जवाब में कहा कि मैं मरना नहीं चाहता हूं। मैं और लिखना-पढ़ना चाहता हूं। मैं सौ साल तक जीना चाहता हूं। लोगबाग कहते हैं कि आप अभी बहुत ठीक है। लेकिन ज़िंदा हूं तो याद भी है। याद भी बहुत ताक़त देती है। इस बीच बातों-बातों में पत्नी की स्मृति में गले रौंध जाते हैं। और आंखों से अनायास आंसू टपक पड़ते हैं। कुछ देर तक शब्ध धुंधले पड़ जाते हैं। और जुबां बेबस हो जाती है। फिर ख़ुद को संभालते हुए कहते हैं कि मैं जब मरने लगूं तो मेरे बच्चे सीमा, रेखा और जो हैं सब रहे हीं। ज़िदगी की जो ख़ूबसूरती है, वो भी मेरे सामने रहे। और आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी और मेरी पत्नी ये दो मुझे मरते समय याद आएं।

साहित्यकार को कॉम्यूनल नहीं कहा जा सकता: डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी

अभी आचार्य हाशमी स्मृति पुरस्कार-2025 आपको प्रदान किया गया। यह पुरस्कार पाकर आप कैसा महसूस कर रहे हैं?

मैं बहुत गौरवान्वित महसूस कर रहा हूं। पुरस्कार तो मिलते रहते हैं। लेकिन यह पुरस्कार आचार्य हाशमी के नाम से है, एक ऐसे आदमी के नाम से है, जो भारत वर्ष में एकता का प्रतीक है, जिसका संबंध हिन्दी उर्दू से नहीं है बल्कि यह जानकर बहुत अच्छा लग रहा है कि बोलियों से है। मैथिली और अन्य बोलियों से है। इसलिए मुझे बहुत अच्छा लग रहा है। और जिस ढंग से यह सम्मान प्रदान किया गया है, और इसे प्रदान करने वाले आज़ाद साहब जो उनके साहबज़ादे हैं, मुझे पाकर अच्छा लगा।

आज सांप्रदायिक सौहार्द की क्या स्थिति है। आपके ज़माने और इस ज़माने में कोई फ़र्क़ आया है?

देखिए, छुटपुट घटनाएं तो होती रहती हैं। लेकिन जो सबसे बुरा होना था, वो तो हो चुका। और इतना बुरा हो चुका कि उससे और बुरा कुछ हो नहीं सकता। हिन्दुस्तान तक़सीम हो गया। इससे बुरा तो कुछ हो नहीं सकता था। सांप्रदायिकता यानी कम्यूनिलिज़्म फ़िरक़ापरस्ती उसने अपना इतिहास का जो सबसे भयंकर कृत्य था, वो कर दिया। देश के दो टुकड़े कर दिए। तो मैं एक बात ये जरूर कहना चाहता हूं कि हिन्दुस्तान के जब टुकड़े हुए, तब फ़िज़ा बहुत ख़राब थी। बहुत उत्पात हुआ। बहुत हिंसा हुई। मुसलमान, जहां वो बहुतात में थे, उन्होंने हिन्दुओं को मारा। हिन्दुओं ने भी कम नहीं मारा। हिन्दुओं ने भी बहुत मारा मुसलमानों को। और ये टुकड़े होना ही ग़लत था। लेकिन गांधी जी नहीं चाहते थे। उन्होंने तो कहा था कि मेरी लाश पर देश के टुकड़े होंगे। और देश के टुकड़े होते ही उनकी लाश हो गई। यह भी सच है। जो होना था हो गया। लेकिन अभी भी छिटपुट घटनाएं होती रहती हैं। मैं ठीक से नहीं जानाता कि पाकिस्तान में हिन्दुओं की क्या हालत है? और जो कहा जाता है, उसपर मैं यक़ीन नहीं करता। लेकिन ये लोग बताते हैं कि वहां आबादी बहुत कम हो गई है। हिन्दुस्तान में मुसलमान की हालत भी ठीक नहीं है। लगभग सेकेंड सीटीजन के जैसा है। यह सच्ची बात है। इसको छुपाने की कोई बात नहीं है। आर्मी में पुलिस में उनकी मौजूदगी लगभ नहीं है। प्रधानमंत्री इस मुल्क का कोई मुसलमान होगा, ये मैं सोच नहीं सकता हूं। लेकिन फिर भी हिन्दुस्तान में मुसलमान इज़्ज़त की ज़िंदगी बसर करते हैं। अब हिन्दुस्तान के मुसलमान अपनी कट्टरता में पाकिस्तानी मुसलमान से अलग हैं। मैं यह महसूस कर रहा हूं। अब धीरे-धीरे उनके अंदर बदलाव आया है। गांव में जो ऐसे कट्टर मुसलमान होते थे, तो नारा लगाते थे- हँस कर लिया है पाकिस्तान और लड़कर लेंगे हिन्दुस्तान। तो अब वो बात नहीं है। अब उनको धीरे-धीरे लग रहा है कि हिन्दुस्तान के मुसलमान ज़्यादा सेफ़ हैं। मैं महसूस करता हूं कि वो देशभक्ति की तरफ़ हैं। पाकिस्तान से लड़ाई में तो कई मुसलमानों ने शहादत दी है। इसमें दो नाम तो बिर्गेडियर उस्मान और अब्दुल हमीद को तो सब जानते हैं। औऱ पता करने की जरूरत है कि कितने मुसलमान भारत-पाक की लड़ाई में शहीद हुए हैं। लेकिन अब हिन्दुस्तान की हालत बेहतर है। और पाकिस्तान की भी हालत बेहतर है।

हिन्दू मुसलमान के बीच जो नफ़रत की खाई है, वो तो बढ़ती जा रही है। यह स्थिति अचानक कैसे पैदा हुई?

यह अचानक नहीं पैदा हुई। रिलीजन में हम नफ़रत की बात करते हैं। हिन्दू-मुसलमान छोड़ दीजिए। शिया-सुन्नी में नफ़रत क्यों है? बाभन और चमार में क्यों लड़ाई? कायस्थ और बनिया क्यों लड़ते हैं आपस में? जहां आपने अपने को और लोगों से अलग करके यह बताना शुरू कर दिया कि हम तो बेहतर हैं, तो यह स्थिति बनने लगती है।

मेरा सवाल है कि यह सियासत है या यह सियासी साज़िश है?

सियासत तो उतनी नहीं है। सियासी साज़िश भी है। और सियासत वोट के लिए इलेक्शन में जीतने के लिए भड़काई जाती है। यहां पर और बातें करूंगा तो आप लोग कहेंगे कि पॉलटिक्स हो रही है। दो पार्टियां इस देश में ऐसी हैं, जो कास्टे के नाम पर वोट नहीं मांगती है। कांग्रेस और कम्यूनिस्ट। कम्यूनिस्ट की तो कुछ ऐसी जादू है केरला में के वो वहां बने रहते हैं। और त्रिपुरा में भी थे। कांग्रेस भी कास्ट पर वोट नहीं मांगती थी। जो लोग कास्ट पे वोट मांगते हैं, इन दिनों उनको वोट मिलता है। लेकिन कांग्रेस कभी कास्ट पोलटिक्स नहीं करती। इसलिए कई जगह नहीं जीतती है। इसलिए कम्यूनिस्ट कहीं नहीं जीत रही है। पता नहीं केरला में कैसे जीत रही है? मुझे समझ में नहीं आता। शायद एजुकेशन वहां बहुत है इसलिए।

अक्सर कहा जाता है कि लोग शिक्षित होंगे तो कट्टरता कम होगी। लेकिन आज शिक्षित लोग ज़्यादा हैं। और कट्टरता उन्हीं में देखी जा रही है। आप क्या कहना चाहेंगे?

नहीं..नहीं।

इसी पर एक श्लोक है- दुर्जनः परिहर्तव्यः विद्ययाऽलंकृतोऽपि सन् मणिना भूषितः सर्पः किमसौ न भयंकर। आप क्या कहना चाहेंगे?

यह तुमने बड़ी अच्छी बात कही है। एक हमारे दोस्त हैं बिनोद कुमार श्रीवास्तव। उनका एक उपन्यास है। उसमें उन्होंने कहा है कि जैसे-जैसे लोग पढ़ता-लिखता है, वैसे वैसे कम्यूनल होता चला जाता है। इसकी वजह पढ़ाई नहीं है। सभी के साथ ऐसा नहीं होता है। पढ़ लिखकर कोई सियासत में जाना चाहते हैं, तो कास्ट को एड्रेस करने के लिए यह एक इज़ी साधन है। आप अच्छा काम करके ज़्यादा वोट पाएं, यह मुशिकल है। जो वोटर है, वह इससे प्रभावित जल्दी हो जाता है। हमारे रक्त में इतना ज़हर है कि अच्छा काम करने वाले को वोट नहीं मिलता है।

क्या साहित्यकार भी इसके शिकार हैं?

हां होंगे।

आपकी नज़र में साहित्यकार भी कम्यूनल हैं?

साहित्यकार को कॉम्यूनल नहीं कहा जा सकता है। गांव का शब्द है चोरकट। एक चोर होते हैं। और जो कमीने चोर होते हैं, उनको चोरकट कहते हैं। ये

चोरकट लोग जो होते हैं, वो ये सब काम करते हैं। कोई साहित्यकार बड़ा कैसे हो जाएगा कॉम्यूनिलज़्म फैलाकर?

आपने साहित्य की शुरूआत कविता, कहानी, आलेख या निबंध से की?

कविता से।

जिस समाज को आप देख रहे हैं इसे कैसा देखना चाहते हैं। समाज को लेकर आपकी क्या कल्पना है?

समाज का सपना देखना बहुत सुना। और बहुत देखा। आदमी जो सपना देखता है, वह यथार्थ का ही एक रूप होता है। आदमी सबकुछ का सपना नहीं देख सकता। ज़िंदगी में जो है, वही बनकर सपना आता है।

एक घटना सुनाता हूं। प्रेमचंद से पूछा गया था कि आपका सपना क्या है।

उन्होंने कहा था कि बच्चों को नौकरी मिल जाए मेरे, और हिन्दुस्तान आज़ाद हो जाए। और दाल रोटी मिले। तो इतना सपना मेरा है। जब इंटरव्यू ख़त्म होने लगा, तो उन्होंने कहा, सुनो-सुनो एक और चीज़ चाहिए। दाल में एक तोला घी भी पड़ा रहे।

इसलिए मेरा सपना यही है कि इस समय बेरोज़गारी बहुत है। और ये लोग समझते नहीं है। हिन्दुस्तान की हालत पहले से बेहतर है। और उसका सबसे ज़्यादा क्रेडिट जवाहर लाल नेहरू को है। इसमें मैं कोई समझौता नहीं कर सकता हूं। कांग्रेस ने बहुत कुछ किया है। दुनिया के सामने दलित और नारियों की हालत बेहतर है। यह दो बड़े अचीवमेंट हैं। जो लोग कहते हैं कि 70 साल में कुछ नहीं हुआ, उन्हें उस वक़्त भेज दिया जाता तब पता चलता।

आज बेरोज़गारी बहुत बढ़ गई है। मेरी एक कविता है-

एक स्टूटेंड्स है मेरा
वाद-विवाद प्रितयोगिता में बहुत हिस्सा लेता है
लंबा है, पतला है, ख़ूबसूरत है
लेकिन
जब से एम ए पास हुआ है हकलाने लगा है...

तो नौकरी नहीं मिलती है। एक बेरोज़गार युवक क्या मॉरल बनेगा? कैसे किसी के सामने सीना तान कर खड़ा होगा? मेरे ख़्याल से शिक्षा बेहतर होनी चाहिए। और बेरोज़गारी दूर होनी चाहिए। मेरी प्रबल इच्छा यही है कि बेरोज़गारी दूर हो। और शिक्षा फैले।

व्यक्तिगत कोई सपना, जो अधूरा रह गया हो?

अब मैं 95-96 साल का हो गया। मैं बहुत सटिसफ़ाइड हूं अपनी लाइफ़ से। जो कमी है, वो कमी कोई नहीं पूरी कर सकता। (रोते हुए) जब से सीमा की मां का देहांत हुआ, जैसा है वैसा ही रहे। बिना किसी लंबी बीमारी के मैं लिखना-पढ़ना चाहता हूं। मैं सौ साल तक जीना चाहता हूं। मैं मरना नहीं चाहता हूं। और एक बात और भी है मेरे अंदर, लोग भी बताते हैं। और मैं भी महसूस करता हूं कि ठीक ठाक हूं मैं अभी। दिल और दिमाग़ दुरुस्त हैं अभी मेरे। मुझे अच्छा लगता है सुनकर यह। लेकिन यह भी है कि ज़िंदा हूं, तो याद है। याद भी बहुत ताक़त देती है। बहुत ताक़त देती है। और जो पक्का होना ही है, मैं जब मरने लगूं तो मेरे बच्चे तो मेरे पास हो हीं, लेकिन ज़िंदगी की जो ख़ूबसरती है, वह भी मेरे सामने रहे। मेरी आंखों के सामने वो ख़ूबसरती रहे। और आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदीऔर मेरी बीवी यह दो मुझे याद आएं मरते समय। और मरने पर बहुत सोचता हूं। लेकिन यह लगता है कि मेरे स्टूडेंटस मुझे बहुत याद करेंगे।

आप अच्छे लेखक के साथ-साथ अच्छे वक्ता भी हैं। जब मेरी पुस्तक का विमोचन उपराष्ट्रपति सभागार में हो रहा था, तो आप धारा प्रवाह ऐसे बोल रहे थे कि बीच में आपको टोकना ठीक नहीं लगा। और कुल 30 मिनट का कार्यक्रम का समय तय था। लेकिन आपने 35 मिनट तक लाजवाब अंदाज़ में बिखरे चित्र, साहित्य, मुझपर और मेरे ख़ानदान पर स्पीच दिया। नतीजे में उपराष्ट्रपति के इशारे पर उस कार्यक्रम को 35 मिनट से बढाकर 01.15 मिनट के लगभग किया गया। क्या आपने कभी सियासत में जाने का सोचा या कोई चुनाव लड़ा?

मैं राजनीति में रहा हूं। हां-हां। याद आया उपराष्ट्रपति वाला कार्यक्रम। मैंने इलेक्शन लड़ा। मैं सीपीआई का मेंबर हूं। डूटा का चुनाव जीता हूं। हाईएस्ट वोट मुझे मिला था। दिल्ली यूनिवर्सिटी में सीपीआई को इतना वोट मिलना इंटरनेशनल इवेंट बन गया। फौरन मुझे मास्को भेजा गया। मैं कई बार मास्को घूम आया। मैं जेल भी गया हं। एक बार आरएसएस में रहते जेल गया। मैं आरएसएस का मेंबर था तगड़ा।

और फिर कम्यूनिस्ट पार्टी में भी जेल गया। लेकिन अंदर नहीं गया। सज़ा दी गई थी कि जब तक कोर्ट नहीं उठता है, तब तक अरेस्ट हैं आप।

आपने आरएसएस और सीपीआई दोनों को देखा। यानी पश्चिम और पूरब दोनों को। लेकिन दोनों में से ज़्यादा पसंद कौन आया?

अरे पसंद नहीं। आरएसएस अच्छी नहीं है। आरएसएस में मैं तगड़ा कट्टर था। लेकिन वो ठीक नहीं था।

आपको लगा बाद में कि यह हमारे लायक़ नहीं है?

संक्रीण दिमाग़ है उसका।

कभी एमएलए-एमपी के चुनाव का ऑफ़र आया?

ऑफ़र नहीं आया। और जीवन में कुछ ऐसा हुआ कि हट गया उधर से।

हिन्दुस्तान में कोई लेखक रॉयल्टी के बल पर ज़िंदा नहीं रह सकता ऐसा क्यों?

पहले लोग रॉयल्टी के बल पर ज़िंदा रहते थे।

हिन्दी और उर्दू में केवल है। बाक़ी भाषा में अगर आप चर्चे में हैं, तो आपके कमाने खाने के तरीक़े साहित्य से निकल जाते हैं।

आपको लगता है कि सरकार को इस ओर ध्यान देना चाहिए। सरकार से आप इस तरह की कोई मांग करना चाहेंगे?

ज़रूर होना चाहिए। और सरकार से मैं ऐसी मांग भी करना चाहंगा। मैं तो यह कहूंगा कि लेखकों को रॉयल्टी ठीक से क्यों नहीं दी जाती है, इस पर प्रकाशकों से पूछताछ होनी चाहिए। और सीबीआई व ईडी जैसे सरकारी संस्थानों को प्रकाशकों पर नकेल कसनी चाहिए।

युवाओं के लिए कोई सूत्रवाक्य

कुल मिलाकर सुखी होना सच्चे अर्थों में सबसे बड़ी नैतिकता है। लेनिन ने कहा था कि आदमी को ज़िंदगी सिर्फ़ एकबार मिलती है, उस ज़िंदगी को ऐसे बसर करना चाहिए कि कभी शर्मिंदा नहीं होना पड़े कि मैंने ऐसा काम किया। मगर ऐसा होता नहीं है। आदमी को बहुत ऐसे काम करने पड़ते हैं ज़िंदगी में जिससे कि शर्मिंदा होना पड़ता है। वो आदमी बड़ा बदक़िस्मत होगा, जो ज़िंदगी में कभी शर्मिंदा नहीं हुआ होगा। अच्छी जिंदगी होनी चाहिए। आदमी को नाशुक्रा नहीं होना चाहिए। मनहूस आदमी बहुत पापी होता है। ज़िंदगी से सिर्फ़ शिकायतें ही नहीं करनी चाहिए।

(साथ में मेघ देवता के लेखक सैयद असद आज़ाद)

विश्वनाथ सचदेव
स्तंभकार

राष्ट्रीय मुद्दों पर न हो वोट की राजनीति

ऑपरेशन सिंदूर अभी समाप्त नहीं हुआ, स्थगित हुआ है। स्थगित होने का नया मतलब है, यह समझना यदि मुश्किल नहीं है तो आसान भी नहीं है। फिर भी, पहलगाम में हुई अमानुषिक आतंकवादी कार्रवाई के विरोध में जिस तरह सारा देश एक होकर उठ खड़ा हुआ और जिस तरह विपक्ष ने सरकार को पूरा समर्थन दिया, उससे राष्ट्र की एकता और ताकत का अहसास तो हो ही जाता है। जहां तक राष्ट्र की सुरक्षा का सवाल है, यह एकता भरोसा देने वाली है। यह मुद्दा राजनीति का कतई नहीं है। पहले भी जब-जब ऐसी स्थितियां आई हैं, सारे देश ने एक होकर दुश्मन का मुकाबला किया है, उसे धूल चटाई है। आगे भी यदि कभी स्थितियां बनती हैं तो निश्चित रूप से देश एक होकर खड़ा होगा, इसमें संदेह नहीं करना चाहिए।

लेकिन, राजनीति की एक विवशता यह भी है कि राजनीतिक स्वार्थ अक्सर राष्ट्रीय हितों पर हावी हो जाते हैं। इसलिए जरूरी है कि इस स्थिति से बचने के प्रति सजग रहा जाए। यहीं गड़बड़ हो रही है। जहां समूचा विपक्ष ऑपरेशन सिंदूर की सफलता के लिए राष्ट्र की एकता को रेखांकित कर रहा है, वहीं सरकार इसका राजनीतिक लाभ उठाने के लालच से बच नहीं पा रही। हालांकि आतंकवाद के विरुद्ध जारी की गयी यह लड़ाई अभी पूरी नहीं हुई है, ऑपरेशन सिंदूर सिर्फ स्थगित हुआ है, पर इसे सफलता घोषित करके उसका राजनीतिक लाभ उठाने की कोशिश भी स्पष्ट दिखाई दे रही है। ऐसा नहीं होना चाहिए था, पर हुआ है तो इसके बारे में बात भी होगी। और बात निकलेगी तो दूर तलक जाएगी...

इस बारे में कुछ और कहने से पहले इस बात को स्वीकार किया जाना जरूरी है कि पहलगाम के कांड की सजा देने के लिए हमारी सेना ने पाकिस्तान स्थित आतंकवादियों के ठिकानों को जिस तरह से ध्वस्त किया है, उसकी सिर्फ प्रशंसा ही की जा सकती है। ऐसा नहीं है कि इसके अलावा और कुछ किया ही नहीं जा सकता था, अथवा किया ही नहीं जाना चाहिए था, पर जो कुछ हुआ उसकी महत्ता को स्वीकार करना ही चाहिए। इस शौर्य के लिए जहां हमारी सेना प्रशंसा की अधिकारी है, वहीं देश के नेतृत्व को भी उसके हिस्से का यश मिलना चाहिए। पर जिस तरह से सरकार इस यश को भुनाने की कोशिश कर रही है, उससे सवाल उठने स्वाभाविक हैं।

सरकार की इस कार्रवाई की शुरूआत तो 'ऑपरेशन' के नामकरण के साथ ही हो गई थी। निश्चित रूप से, किसी भी राजनीतिक दल में राजनीतिक लाभ उठाने की लालसा तो होती ही है, पर भाजपा में ऐसा हर लाभ प्रधानमंत्री के खाते में जमा करने की प्रवृत्ति एक प्रतियोगिता का रूप ले चुकी है। शायद इसीलिए, इस बात को प्रचारित करना जरूरी समझा गया कि कार्रवाई के नाम के साथ सिंदूर जोड़ने का आइडिया स्वयं प्रधानमंत्री का था। हो सकता है यह सही भी हो, पर सामान्यता ऐसी सैनिक कार्रवाइयों का नामकरण सेना के संबंधित विभाग ही करते हैं। यहां सच्चाई कुछ भी

हो, भाजपा ने सिंदूर के साथ जुड़ी भावनाओं का राजनीतिक लाभ उठाने में कोई देरी नहीं की।

अपनी रगों में खून की जगह 'गर्म सिंदूर' बहने की बात कहकर जैसे प्रधानमंत्री ने अपने समर्थकों को आगे बढ़ने का एक रास्ता दिखा दिया था। देश के अलग-अलग हिस्सों में प्रधानमंत्री की जय-जयकार के लिए सभाओं और 'रोड शो' का आयोजन हो रहा है। प्रधानमंत्री अच्छी तरह समझते हैं कि 'चुटकी भर सिंदूर' की कीमत कितनी होती है। इसीलिए उन्होंने रगों में सिंदूर बहने वाली बात कही थी। वे यहीं तक नहीं रुके। देश भर में उनके भक्तों ने ऑपरेशन सिंदूर की सफलता का जश्न मनाने की योजना बना ली। देश की महिलाओं को 'सिंदूर' बांटने की योजना भी बन गई, ऐसा कहा जाता है। इस आशय का समाचार जब मीडिया में आया तो इसकी आलोचना भी खूब हुई। भाजपा ने शायद सोचा था कि पिछले चुनाव में जिस तरह प्रधानमंत्री ने कांग्रेस के 'आपका मंगलसूत्र छीनकर दूसरों को देने की बात' कहकर राजनीतिक लाभ उठाने की कोशिश की थी, वैसा ही लाभ सिंदूर वाली बात से भी लिया जा सकेगा। पर इस बार दांव कुछ उल्टा पड़ता दिखा। फिर भाजपा की ओर से सिंदूर बांटने की किसी भी योजना से इंकार वाला समाचार आया। पर चर्चा इस बात की है कि इस इंकार के लिए भाजपा को पूरे ढाई दिन क्यों लगे? भाजपा का आईटी सेल अचानक इतना धीमा कैसे हो गया? जिस समाचार पत्र ने यह समाचार छापा था उसने भी खेद प्रकट करने में पूरा समय लिया। आखिर क्यों?

इस क्यों का उत्तर कोई नहीं दे रहा। अब न भाजपा यह मानने को तैयार है कि उसके 'ऑपरेशन सिंदूर' का यह सिंदूर बांटने वाला हिस्सा राजनीतिक भूल थी, और न ही विपक्ष भाजपा को नीचा दिखाने वाला यह मौका सहज ही गंवाना चाहता है।

बिहार का चुनाव अभी पांच-छह महीने दूर है। भाजपा यह उम्मीद कर सकती है कि तब तक उसकी यह सिंदूर बांटने वाली चूक मतदाता भूल जाएगा। पर यह सवाल अपनी जगह है कि हमारे राजनेता अपने राजनीतिक स्वार्थ के लिए जनता की भावनाओं के साथ कब तक खेलते रहेंगे? और सवाल यह भी है कब तक जनता इस खिलवाड़ का शिकार बनती रहेगी? होना तो यह चाहिए था कि ' ऑपरेशन सिंदूर' आतंकवाद के खिलाफ निर्णायक लड़ाई के रूप में ही समझा-स्वीकारा जाता, पर इसे माताओं-बहनों के माथे के सिंदूर की गरिमा और पवित्रता से जोड़कर सांस्कृतिक-धार्मिक प्रतीकवाद का हिस्सा बना दिया गया। हर संभव मुद्दे का राजनीतिक लाभ उठाने की भूख ने हमारी राजनीति को सरकारें बनाने-बिगाड़ने तक सीमित कर दिया है!

पहलगाम में आतंकवाद के नंगे नाच के माध्यम से देश में अलगाव की आग को हवा देने की कोशिश की गई थी। इस कोशिश को निरर्थक बनाने का एक अभियान था हमारा ऑपरेशन सिंदूर। वह कितना सफल रहा और कहां हमारी कमियां रह गयीं, इसकी तहकीकात होनी ही चाहिए। हमारे रक्षा प्रमुख (सीएसडी) ने कहा है, 'युद्ध में नुकसान होते ही हैं, क्या नुकसान हुआ से महत्वपूर्ण यह जानना है कि नुकसान क्यों हुआ, उससे कैसे बचा जा सकता है।' उनकी इस बात की गंभीरता को समझा जाना जरूरी है। उनकी कही बात यह भी स्पष्ट कर देती है कि 'ऑपरेशन सिंदूर' में कुछ नुकसान तो हमारा हुआ ही है। इसे छिपाने की कोई आवश्यकता नहीं है।

हां, आवश्यकता इस बात की जरूर है कि मंगलसूत्र या सुहाग के सिंदूर जैसे मुद्दों को राजनीतिक हितों की पूर्ति का माध्यम न बनाया जाए। इन प्रतीकों की सांस्कृतिक और धार्मिक महत्ता के साथ कोई खिलवाड़ नहीं होना चाहिए। इन्हें राजनीति का हथियार बनाकर यदि कुछ प्राप्त किया जाता है तो उसकी कीमत बहुत भारी होगी।

प्रधानमंत्री ने सही कहा है कि पहलगाम में आतंकियों ने भारत का खून ही नहीं बहाया, हमारी संस्कृति पर भी हमला किया है। पर ऑपरेशन सिंदूर को घर-घर सिंदूर पहुंचाने की कवायद में बदलना भी अपने आप में संस्कृति पर हमला है। अच्छा है भाजपा ने इस खबर को 'फेक' कह दिया है, पर यह सवाल तो हवा में है ही कि सिंदूर जैसी चीज के साथ जुड़ी भावनाओं और पवित्रता को राजनीति से जोड़ने की कोशिश ही क्यों होती है? राजनीति से जुड़े सभी पक्षों को हमारे सांस्कृतिक मूल्यों को आदर देना होगा। शुचिता के लिए कोई स्थान तो होना चाहिए हमारी राजनीति में!

(लेखक वरिष्ठ पत्रकार हैं।)

पर्यावरण की सुरक्षा हम सबकी जिम्मेदारी

संदीप सृजन
स्तंभकार

पर्यावरण वह नींव है जिस पर मानव सभ्यता, प्रकृति और समस्त जीव-जंतुओं का अस्तित्व टिका हुआ है। पर्यावरण का एक और महत्वपूर्ण पहलू है इसका सांस्कृतिक और आध्यात्मिक मूल्य। भारत में नदियां, जैसे गंगा और यमुना, केवल जल स्रोत नहीं हैं, बल्कि इन्हें पवित्र माना जाता है। पहाड़ और जंगल भी कई समुदायों के लिए पूजनीय हैं। इस प्रकार, पर्यावरण का संरक्षण हमारी सांस्कृतिक विरासत को बचाने का भी एक तरीका है।

आज पर्यावरण कई गंभीर चुनौतियों का सामना कर रहा है। जीवाश्म ईंधन (कोयला, तेल, और प्राकृतिक गैस) के अत्यधिक उपयोग से कार्बन डाइऑक्साइड, मीथेन, और अन्य ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन बढ़ रहा है। इससे पृथ्वी का औसत तापमान बढ़ रहा है, जिसके परिणामस्वरूप ग्लेशियर पिघल रहे हैं, समुद्र का जलस्तर बढ़ रहा है, और मौसम के पैटर्न में बदलाव आ रहा है। भारत में, हिमालय के ग्लेशियरों का पिघलना और तटीय क्षेत्रों में बाढ़ का खतरा बढ़ रहा है। विश्व बैंक की एक रिपोर्ट के अनुसार, यदि ग्लोबल वार्मिंग को 1.5 डिग्री सेल्सियस तक सीमित नहीं किया गया, तो 2030 तक लाखों लोग जलवायु शरणार्थी बन सकते हैं।

औद्योगिक उत्सर्जन, वाहनों का धुआं, और फसल अवशेषों को जलाना वायु प्रदूषण के प्रमुख कारण हैं। दिल्ली, जो दुनिया के सबसे प्रदूषित शहरों में से एक है, हर साल सर्दियों में स्मॉग की मोटी चादर से ढक जाता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार, वायु प्रदूषण हर साल वैश्विक स्तर पर 70 लाख से अधिक लोगों की मृत्यु का कारण बनता है। यह फेफड़ों की बीमारियों, हृदय रोग, और कैंसर का कारण बन रहा है।

औद्योगिक कचरा, रासायनिक उर्वरक, और घरेलू अपशिष्ट नदियों, झीलों, और भूजल को दूषित कर रहे हैं। भारत में गंगा और यमुना जैसी नदियां अत्यधिक प्रदूषित हैं। समुद्रों में प्लास्टिक कचरे का जमा होना जलीय जीवन को नष्ट कर रहा है। एक अनुमान के अनुसार, 2050 तक समुद्रों में मछलियों से ज्यादा प्लास्टिक होगा। जंगलों को कृषि, खनन, और शहरीकरण के लिए काटा जा रहा है। भारत में, 1950 के बाद से जंगल क्षेत्र में काफी कमी आई है। वनों की कटाई से न केवल जैव-विविधता पर असर पड़ रहा है, बल्कि कार्बन अवशोषण की प्राकृतिक प्रक्रिया भी बाधित हो रही है।

मानव गतिविधियों, जैसे शिकार, आवास विनाश, और प्रदूषण, के कारण कई प्रजातियां विलुप्त हो रही हैं। विश्व प्रकृति निधि (हहत्रः) की एक रिपोर्ट के अनुसार, 1970 के बाद से वैश्विक स्तर पर वन्यजीव आबादी में 68%

की कमी आई है। भारत में बाघ, गैंडा, और कई पक्षी प्रजातियां खतरे में हैं। प्लास्टिक कचरे का अनियंत्रित उपयोग और उसका अनुचित निपटान पर्यावरण के लिए एक बड़ी समस्या है। भारत में हर साल लाखों टन प्लास्टिक कचरा उत्पन्न होता है, जिसका अधिकांश हिस्सा लैंडफिल या समुद्र में चला जाता है।

पर्यावरण संरक्षण केवल एक नैतिक दायित्व नहीं है, बल्कि यह हमारी उत्त-रजीविता का प्रश्न है। यदि हम पर्यावरण की उपेक्षा करते हैं, तो हम अपने भविष्य को खतरे में डाल रहे हैं। स्वच्छ हवा, पानी, और भोजन के बिना जीवन संभव नहीं है। पर्यावरण का संरक्षण आर्थिक स्थिरता और सामाजिक समानता के लिए भी जरूरी है। उदाहरण के लिए, स्वच्छ ऊर्जा और टिकाऊ कृषि प्रथाएं न केवल पर्यावरण को बचाती हैं, बल्कि रोजगार के अवसर भी पैदा करती हैं।

पर्यावरण संरक्षण का एक और महत्वपूर्ण पहलू है भविष्य की पीढ़ियों के प्रति हमारी जिम्मेदारी। हमें यह सुनिश्चित करना होगा कि हम अपने बच्चों और उनके बच्चों के लिए एक स्वस्थ और टिकाऊ दुनिया छोड़ें। इसके लिए हमें अभी से कदम उठाने होंगे। जलवायु परिवर्तन और प्रदूषण के प्रभाव पहले से ही दिखाई दे रहे हैं, और यदि समय रहते कार्रवाई नहीं की गई, तो स्थिति और गंभीर हो सकती है।

पर्यावरण संरक्षण की शुरूआत व्यक्तिगत स्तर से होती है। छोटे-छोटे बदलाव हमारे दैनिक जीवन में बड़े परिणाम ला सकते हैं। जैसे बिजली का उपयोग कम करें। अनावश्यक बत्तियां और उपकरण बंद करें। ऊर्जा-कुशल उपकरण जैसे छएऊबल्ब और सौर ऊर्जा का उपयोग करें। सौर पैनल स्थापित करना एक दीर्घकालिक निवेश हो सकता है। पानी की बबार्दी रोकें। नल बंद करें जब उसका उपयोग न हो। वर्षा जल संचयन जैसी तकनीकों का उपयोग करें। उदाहरण के लिए, घरों में रेनवॉटर हार्वेस्टिंग सिस्टम स्थापित करके भूजल स्तर को बढ़ाया जा सकता है। एकल-उपयोग प्लास्टिक (जैसे प्लास्टिक बैग, बोतलें) से बचें। कपड़े के थैले और पुनः उपयोग योग्य बोतलों का उपयोग करें। स्टेनलेस स्टील या कांच की बोतलें एक अच्छा विकल्प हैं। कचरे को अलग करें और पुनर्चक्रण योग्य सामग्री को रीसाइक्लिंग सेंटर में भेजें। पुरानी वस्तुओं को फेंकने के बजाय उनका पुनः उपयोग करें। उदाहरण के लिए, पुराने कपड़ों से बैग बनाए जा सकते हैं। अपने आसपास पेड़ लगाएं। पेड़ न केवल हवा को शुद्ध करते हैं, बल्कि मिट्टी के कटाव को भी रोकते हैं। स्थानीय प्रजातियों के पेड़ लगाना अधिक लाभकारी होता है।

वनों की कटाई पर रोक लगाई जाए और बड़े पैमाने पर वृक्षारोपण अभियान चलाए जाएं। संरक्षित क्षेत्रों और राष्ट्रीय उद्यानों की संख्या बढ़ाई जाए। भारत में ह्यहरित भारत मिशनह्ण जैसे कार्यक्रम इस दिशा में कार्य कर रहे हैं। स्कूलों और कॉलेजों में पर्यावरण शिक्षा को अनिवार्य किया जाए। सामुदायिक स्तर पर जागरूकता अभियान चलाए जाएं। पर्यावरण संरक्षण पर आधारित कार्यशालाएं और सेमिनार आयोजित किए जाएं।

शहरी नियोजन और विकास में टिकाऊ प्रथाओं को अपनाया जाए। हरित भवनों, स्मार्ट शहरों, और पर्यावरण-अनुकूल परिवहन प्रणालियों को बढ़ावा दिया जाए। भारत में स्मार्ट सिटी मिशन इस दिशा में एक प्रयास है। जलवायु परिवर्तन और पर्यावरण संरक्षण वैश्विक मुद्दे हैं। पेरिस समझौते जैसे अंतरराष्ट्रीय समझौतों को लागू करने के लिए देशों को एकजुट होना होगा। भारत ने इस समझौते के तहत अपने कार्बन उत्सर्जन को कम करने का वचन दिया है ।प्रभावी कचरा प्रबंधन प्रणाली विकसित की जाए। प्लास्टिक कचरे को कम करने के लिए नीतियां बनाई जाएं और रीसाइक्लिंग को बढ़ावा दिया जाए। भारत में स्वच्छ भारत अभियान इस दिशा में एक कदम है।

भारत, जो एक तेजी से विकसित हो रहा देश है, पर्यावरण संरक्षण के लिए कई कदम उठा रहा है। सरकार ने स्वच्छ भारत अभियान, नमामि गंगे, और राष्ट्रीय सौर मिशन जैसे कार्यक्रम शुरू किए हैं। नमामि गंगे परियोजना का उद्देश्य गंगा नदी को प्रदूषण से मुक्त करना है, जबकि स्वच्छ भारत अभियान देश में स्वच्छता और कचरा प्रबंधन को बढ़ावा देता है। भारत ने 2030 तक 500 गीगावाट नवीकरणीय ऊर्जा उत्पादन का लक्ष्य रखा है, जो दुनिया में सबसे महत्वाकांक्षी लक्ष्यों में से एक है।

इसके अलावा, कई गैर-सरकारी संगठन और सामुदायिक समूह वृक्षारोपण, कचरा प्रबंधन, और जागरूकता अभियानों में सक्रिय हैं। उदाहरण के लिए, संगठन जैसे 'सयाजी' और 'ग्रीनपीस इंडिया' पर्यावरण संरक्षण के लिए काम कर रहे हैं। भारत में कई स्थानीय समुदाय भी अपने स्तर पर जंगलों और नदियों को बचाने के लिए प्रयास कर रहे हैं। हालांकि, भारत को अभी भी कई चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। दिल्ली और अन्य बड़े शहरों में वायु प्रदूषण, नदियों का प्रदूषण, और प्लास्टिक कचरे की समस्या अभी भी गंभीर है। इन समस्याओं से निपटने के लिए सरकार, नागरिकों, और निजी क्षेत्र को मिलकर काम करना होगा।

पर्यावरण संरक्षण एक वैश्विक मुद्दा है। कई देश अपने स्तर पर इस दिशा में काम कर रहे हैं। उदाहरण के लिए, यूरोपीय संघ ने 2050 तक कार्बन न्यूट्रल बनने का लक्ष्य रखा है। चीन, जो दुनिया का सबसे बड़ा कार्बन उत्सर्जक है, ने 2060 तक कार्बन न्यूट्रल होने का वचन दिया है। छोटे द्वीपीय देश, जैसे मालदीव, जो जलवायु परिवर्तन से सबसे अधिक प्रभावित हैं, वैश्विक सहयोग की मांग कर रहे हैं।

अंतरराष्ट्रीय संगठन, जैसे संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम और विश्व प्रकृति निधि , पर्यावरण संरक्षण के लिए वैश्विक स्तर पर जागरूकता और नीतियां बना रहे हैं। पेरिस समझौता और सतत विकास लक्ष्य इस दिशा में महत्वपूर्ण कदम हैं। पर्यावरण की सुरक्षा हम सबकी साझा जिम्मेदारी है। यह केवल सरकारों या संगठनों का दायित्व नहीं है, बल्कि प्रत्येक व्यक्ति को इसमें योगदान देना होगा। छोटे-छोटे कदम, जैसे पानी और बिजली की बचत, प्लास्टिक का कम उपयोग, और पेड़ लगाना, बड़े बदलाव ला सकते हैं। साथ ही, नीतिगत स्तर पर कड़े नियम, नवीकरणीय ऊर्जा को बढ़ावा, और अंतरराष्ट्रीय सहयोग भी आवश्यक है।

हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि पर्यावरण हमारा घर है। अगर हम इसे नष्ट करेंगे, तो हमारा अपना अस्तित्व खतरे में पड़ जाएगा। इसलिए, आज से ही हमें पर्यावरण संरक्षण के लिए कदम उठाने चाहिए। यह न केवल हमारी, बल्कि हमारी भावी पीढ़ियों की भलाई के लिए भी जरूरी है। आइए, हम सब मिलकर एक स्वच्छ, हरा-भरा, और टिकाऊ भविष्य बनाने का संकल्प लें।

(लेखक स्वतंत्र पत्रकार और स्तंभकार हैं)

II सचिन त्रिपाठी
स्तंभकार

कहां खो गए देश के जादूगर?

कभी भारत की गलियों, मेलों और चौराहों पर 'अबरा-का-डबरा', 'गिली-गिली छू' की आवाज से भीड़ ठिठक जाती थी। कोई अपनी जेब से निकालकर कबूतर उड़ाता था, तो कोई रस्सी हवा में खड़ी कर उस पर चढ़ जाता था। यह सब 'जादू' था, परंपरा, कला और चमत्कार के सम्मिलन का पर अब? अब वही जादू या तो मंचों पर सिमट चुका है या इंटरनेट के मनोरंजन में गुम हो गया है। सवाल है कहां खो गए भारत के जादूगर?

भारत में जादू सिर्फ मनोरंजन नहीं था, वह एक सामाजिक भूमिका भी निभाता था। जादूगर लोक में व्याप्त 'अचंभे' की भावना को जीवित रखता था। जब विज्ञान आम जन की पहुंच से दूर था, तब जादू उनकी कल्पनाओं का आकाश था। बच्चे और बूढ़े, अमीर और गरीब, सबकी आंखों में वह आश्चर्य और रोमांच भरता था। यही जादूगर किसी मेले में ह्यसांप की रस्सीह्न दिखाता था, तो कहीं गायब होती चीजें। वह हमारे लोक-नाट्य, कहानियों और किस्सों का हिस्सा था।

समय बदला, मनोरंजन के साधन बदले। पहले गांव-शहर में घूमकर प्रदर्शन करने वाला जादूगर धीरे-धीरे टेलीविजन और फिर यूट्यूब के स्टेज पर चला गया। अब लोगों को 'फ्री फायर' और 'नेटफ्लिक्स' में जादू चाहिए, वह भी रीयलिस्टिक ग्राफिक्स और स्पेशल इफेक्ट्स के साथ। ऐसे में रस्सी

का उड़ना या जेब से फूल निकालना अब बच्चों के लिए भी कोई करिश्मा नहीं रहा। इस डिजिटल युग में जादूगर की भूमिका को व्लॉगर, स्ट्रीट आर्टिस्ट और डिजिटल इल्यूजनिस्ट ने ले लिया है लेकिन उनमें वह लोक-भावना नहीं है जो पुराने जादूगर के पास थी जो भाषा, लय, कविता और चालाकी से लोगों का दिल जीतता था।

भारत का समाज तेजी से 'तर्कवादी' हो रहा है। वैज्ञानिक चेतना को बढ़ावा देना जरूरी भी है, पर इसके चलते कई पारंपरिक कलाएं अंधविश्वास की श्रेणी में डाल दी गईं। खासकर 1990 के बाद, जब देश में विज्ञान को बढ़ावा देने के नाम पर हर जादू को 'ढोंग' बताया जाने लगा। स्कूलों में बच्चों को सिखाया गया कि जादू कुछ नहीं होता, यह बस आंखों का धोखा है। बिलकुल सही? पर क्या हर आंख का धोखा कला नहीं होता? क्या 'माया' शब्द, जिसे हमारी संस्कृति ने सबसे गूढ़ तत्त्वों में गिना है, उसी की छाया नहीं था ये जादू?

जादूगरी कोई सरकारी नौकरी नहीं है। न कोई पेंशन, न बीमा, न प्रशिक्षण संस्थान। एक जादूगर की आजीविका पूरी तरह से लोगों की भीड़ पर टिकी होती थी। जैसे ही भीड़ का ध्यान मोबाइल पर गया, जादूगर की थाली सूख गई। बहुत से पुराने जादूगरों ने पेट पालने के लिए चाय की दुकानें खोल लीं, कुछ ने मजदूरी शुरू कर दी। एक पीढ़ी के बाद बच्चों ने इस कला को अपनाने से साफ मना कर दिया – 'इसमें भविष्य नहीं है', यही तर्क दिया गया।

भारत सरकार और राज्य सरकारें जब 'लोककला' के संरक्षण की योजनाएं बनाती हैं तो उसमें जादूगिरी कहीं नहीं दिखाई देती। कठपुतली, नृत्य, संगीत, चित्रकारी इन सभी को जगह मिलती है, पर जादू? जादू आज भी 'न संजीदा' कला समझा जाता ह। न ही राष्ट्रीय स्तर पर कोई जादू उत्सव होता है, न कोई अकादमिक शोध जबकि पश्चिमी देशों ने अपने जादू को ब्रांड में बदल दिया। हॉलीवुड के डेविड कॉपरफील्ड हों या ब्रिटेन के डेरेन ब्राउन, वे लाखों डॉलर कमाते हैं और अपनी कला को 'मेंटलिज्म' और 'इल्यूजन साइंस' का हिस्सा बना चुके हैं।

अब भी भारत में पीसी सरकार, सम्राट जन्मेजय शानू, ओ.पी. शर्मा जैसे नाम गूंजते हैं। उनके शोज में आज भी हॉल भरते हैं, तालियां बजती हैं लेकिन ये अपवाद हैं, नियम नहीं। आज जरूरत है कि जादू को दोबारा एक लोक-कला के रूप में स्थापित किया जाए। इसके लिए प्रशिक्षण संस्थान, राष्ट्रीय पुरस्कार, शैक्षणिक कार्यक्रम और मंच उपलब्ध कराए जाएं। जादू को सिर्फ 'नकली चमत्कार' मानकर नकारना उचित नहीं. वह कला है जैसे अभिनय, जैसे संगीत।

भारत के जादूगर कहीं नहीं खोए हैं, वे बस हमें देखने की जगह से हट गए हैं। उन्होंने हमारे समाज को हंसाया, चमत्कृत किया, सोचने पर मजबूर किया। आज जब हम चमत्कार तकनीक से खोज रहे हैं, तब जरा ठहरकर उन जादूगरों को याद करें, जो बिना बिजली, बिना कैमरे, केवल अपने हुनर से हमारी दुनिया में 'अविश्वसनीय' लेकर आते थे। शायद वे फिर लौटें। अगर हम उन्हें सम्मान और स्थान दें।

देशों के कर अंतर की तुलना हो सकती है भ्रामक

आर कविता राव

देश में राजकोषीय नीति पर चर्चा के दौरान इस बात पर लगातार जोर दिया जाता है कि देश का कर और सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) अनुपात बढ़ाने की जरूरत है। होने वाली नीतिगत चचाओं में लगातार इस बात पर जोर दिया जाता है कि देश के कर-सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) अनुपात में सुधार करने की आवश्यकता है। इसमें दो तर्क दिए जाते हैं।

पहला, भारत जैसे विकासशील देश में सरकार की भूमिका में विस्तार होना चाहिए और इसके लिए कर-जीडीपी अनुपात अधिक होना ही चाहिए। इसके लिए राजस्व के नए स्रोत पहचानने और छूट तथा रियायत कम अथवा खत्म करने जैसे नीतिगत उपायों पर जोर दिया जाता है।

दूसरा तर्क 'कर में कमी' यानी संभावित कर एवं वास्तविक कर संग्रह के बीच का अंतर मापने को कहता है। इसमें कर प्रशासन सुधारने की बात कही जाती है क्योंकि कर संग्रह में कमी कर चोरी तथा कर से बचने की

वजह से हो सकता है। हाल के अध्ययनों में संभावित राजस्व का अनुमान लगाने के लिए देशवार आंकड़ों का इस्तेमाल किया जाता है।

दूसरे तर्क पर हुए अध्ययनों में सभी देशों के आंकड़े साथ लेकर संभावित राजस्व का अनुमान लगाया जाता है। इसलिए यहां संभावित राजस्व विभिन्न देशों के प्रदर्शन की तुलना पर आधारित है। विश्व बैंक ने हाल ही में 'साउथ एशिया डेवलपमेंट अपडेट, अप्रैल 2025' रिपोर्ट जारी की, जिसमें अलग तरीका अपनाकर अलग नतीजे पेश किए गए। इस रिपोर्ट का उपयोग हम कैसे कर सकते हैं, इसे समझने के लिए नतीजे नीचे संक्षेप में दिए गए हैं।

अध्ययन में उभरते बाजारों और विकासशील अर्थव्यवस्थाओं को केंद्र में रखकर कर की चार प्रमुख श्रेणियों का प्रदर्शन खंगाला गया है झ प्रत्यक्ष करों में कॉरपोरेट कर और व्यक्तिगत आयकर तथा अप्रत्यक्ष करों में उपभोग तथा व्यापार कर। इनमें से हर श्रेणी में भारत के कर अंतर की तुलना उभरते बाजारों वाली विकासशील अर्थव्यवस्थाओं के औसत प्रदर्शन से की गई है। विश्लेषण से पता चलता है कि भारत में कर अंतर औसत से कम है।

नतीजे इन तथ्यों पर आधारित हैंः व्यक्तिगत आय कर और उपभोगर कर में भारत का कर अंतर उभरते विकासशील देशों के औसत से काफी कम है और यह जीडीपी के 0.25 फीसदी से भी कम है। किंतु कॉरपोरेट आय कर तथा व्यापार कर में प्रदर्शन इतना अच्छा नहीं हैं। कॉरपोरेट आय कर उन देशों के औसत से अधिक है और जीडीपी के 1 फीसदी से भी ज्यादा है। व्यापार कर में भारत का कर अंतर उभरते विकासशील देशों के औसत के बराबर यानी जीडीपी के 0.20 फीसदी के बराबर ही है।

नतीजे दिलचस्प भी हैं और चुनौतीपूर्ण भी। दिलचस्प इसलिए हैं क्योंकि बेहद खराब कर संग्रह व्यवस्था की शिकायत करने वाले इन्हें देखकर कहेंगे कि यह व्यवस्था कुछ कर श्रेणियों में अन्य उभरते विकासशील देशों के समान या उनसे बेहतर है। यह देखकर आश्वस्ति होती है। मगर नतीचे चुनौती भरे क्यों हैं, यह समझने के लिए हम कर राजस्व की कुछ श्रेणियों में नतीजों पर विचार करते हैं।

कॉरपोरेट आय कर के लिए अध्ययन में बाजार पूंजीकरण और कॉरपोरेट कर दरों का इस्तेमाल हुआ है। पिछले पांच साल में भारत के लिए औसत प्राइस-टु-अर्निंग (पी/ई) रेश्यो 21.59 से 23.89 के बीच रहा है। उभरते बाजारों वाले विकासशील देशों के लिए यह औसत 12.23 से 15.27 के बीच रहा है। पी/ई रेश्यो अधिक होने का मतलब एक खास बाजार पूंजीकरण के लिए कम आय है।

इसलिए मान सकते हैं कि बाजार पूंजीकरण का इस्तेमाल करने पर कॉरपोरेट आय कर में बहुत अधिक संभावना दिख सकती है और इसलिए कर अंतर भी ज्यादा हो सकता है। इसकी विधि कर दर इस्तेमाल करती है। भारत में कॉरपोरेट करों की दो व्यवस्थाएं हैं - एक में छूट कम हैं और दर कम है, दूसरी में छूट ज्यादा हैं और दर भी ज्यादा है। यह पता ही नहीं है कि कौन सी दर इस्तेमाल होनी चाहिए या दरें बदलने का नतीजा क्या होगा।

व्यक्तिगत आय कर के लिए श्रम से होने वाली आय को आधार माना जाता है। किंतु आय कर के लिए प्रत्यक्ष कर के आंकड़ों में बताई गई गैर-कॉरपोरेट आय को खंगालें तो 2023-24 में कुल आय में मजदूरी और वेतन का हिस्सा केवल 51 फीसदी नजर आता है। बाकी गैर-कॉरपोरेट व्यवसाय आय, आवासीय संपत्ति से आय और पूंजीगत लाभ से आय है।

संभव है कि गैर कॉरपोरेट आय कर का आधार कम आंक लिया गया हो और इसीलिए व्यक्तिगत आय कर की संभावना भी कम करके आंकी गई हो। छूट की सीमा पर भी विचार करने की जरूरत है। आम तौर पर यही माना जाता है कि बहुत कम लोग और संस्थाएं गैर-कॉरपोरेट आय कर जमा करती हैं क्योंकि इसमें छूट की सीमा बहुत ऊंची है। इसलिए अपेक्षा यही होनी चाहिए कि कम छूट सीमा वाले देशों के मुकाबले भारत का कर अंतर अधिक होना चाहिए। इसीलिए परिणाम विरोधाभासी लगते हैं।

व्यापार कर की बात करें तो विश्लेषण में आयात तथा कर की दरों का इस्तेमाल किया गया है। इस श्रेणी के आंकड़े विभिन्न देशों में ज्यादा बदलते नहीं हैं और इसीलिए प्रदर्शन के लिए बेहतर कसौटी मिलती है। इसलिए यहां कर अंतर इस बात पर निर्भर करता है कि सीमा शुल्क व्यवस्था में कितनी अधिक छूट तथा रियायतें दी गई हैं।

यह भी ध्यान रहे कि कई देश मुक्त व्यापार समझौतों में शामिल हैं और कुछ खास मकसदों से रियायत या छूट देते हैं तथा निर्यात के बदले भी ऐसा करते हैं, इसलिए विश्लेषण में देखना चाहिए कि भारत दूसरे उभरते विकासशील देशों से कितना अलग है। ऐसे औसत देशों की तुलना में भारत अधिक छूट तथा रियायत देता है। इस कारण उभरते विकासशील देश के औसत कर अंतर के मुकाबले कर अंतर भी ज्यादा दिखता है।

इस चर्चा से क्या मिल रहा है? विभिन्न देशों के राजस्व प्रदर्शन की तुलना की व्याख्या सावधानी से करनी चाहिए। कर व्यवस्थाओं और अर्थव्यवस्था के ढांचे में बहुत अधिक अंतर होने के कारण नतीजे भी भ्रामक हो सकते हैं। कॉरपोरेट आय कर और गैर-कॉरपोरेट आय कर के लिए आय को अलग-अलग करना मुश्किल हो सकता है, जिसकी चर्चा पहले की भी जा चुकी है। इसके लिए कुछ और रखकर गणना करेंगे तो तमाम देशों के लिए नतीजे भी अलग-अलग हो जाएंगे।

(लेखिका एनआईपीएफपी, नई दिल्ली में निदेशक हैं)

मस्क ने ट्रंप से खींचा हाथ

ईलॉन मस्क और डोनाल्ड ट्रंप के बीच रिश्ते अब पहले जैसे नहीं रहे। ईलॉन मस्क ने डोनाल्ड ट्रंप की दोबारा चुनावी मदद के लिए किए गए ₹2,500 करोड़ ($300 मिलियन) के वादे में से आखिरी ₹830 करोड़ ($100 मिलियन) की रकम फिलहाल रोक ली है। रिपोर्ट के मुताबिक, इससे ट्रंप की चुनावी टीम में बेचैनी है कि आखिर मस्क क्या सोच रहे हैं।

नीति और नियुक्ति को लेकर नाराज हैं मस्क

मस्क ट्रंप की आर्थिक और नीतिगत फैसलों से नाराज हैं। खासकर उस वक्त से जब व्हाइट हाउस ने मस्क के करीबी और स्पेस पार्टनर जैरेड इसाकमैन की ठअरअ प्रमुख पद पर नियुक्ति को रद्द कर दिया। मस्क ने इसके बाद अपने करीबियों से नाराजगी जताई कि उन्होंने 'सैकड़ों करोड़ रुपए दान में दिए, लेकिन उसके बदले में उनके साथी को ही हटा दिया गया।' मस्क ने (पहले ट्विटर) पर इसाकमैन को 'बेहद काबिल और नेकदिल इंसान' बताया।

व्हाइट हाउस ने सफाई दी है कि इसाकमैन का नाम इसलिए हटाया गया क्योंकि उन्होंने पहले डेमोक्रेट्स को भी दान दिया था, और यह बात पहले से ट्रंप प्रशासन को मालूम थी।

टैक्स बिल बना विवाद का बड़ा कारण

मस्क की नाराजगी और बढ़ी जब ट्रंप ने जो टैक्स और खर्च से जुड़ा विधेयक लाए, उसमें इलेक्ट्रिक व्हीकल्स पर मिलने वाली टैक्स छूट को कम किया गया। मस्क की कंपनी टेस्ला को इससे बड़ा नुकसान हो सकता है। मस्क ने इस बिल को 'घटिया और नुकसानदायक' कहा और यहां तक कि अपने फॉलोअर्स से पर अपील की कि ट्रंप ने झगड़े को छिपाने की कोशिश की

रिपोर्ट के मुताबिक ट्रंप ने इस विवाद को सार्वजनिक नहीं होने देने की कोशिश की। व्हाइट हाउस में एक विदाई कार्यक्रम के दौरान उन्होंने कहा, ' ईलॉन वास्तव में जा नहीं रहे हैं, वो आते-जाते रहेंगे।' लेकिन अब मस्क की व्हाइट हाउस में मौजूदगी बहुत कम हो गई है। पहले जहां वो अक्सर आते थे, अब बहुत कम दिखाई देते हैं। हालांकि ट्रंप के करीबी कहते हैं कि वो माफ कर सकते हैं, लेकिन भूलते नहीं। कुछ अधिकारियों ने सांसदों से मस्क की तारीफ में सोशल मीडिया पोस्ट डालने को भी कहा ताकि विवाद और न बढ़े।

क्या बिल पर असर पड़ेगा?

यह सारा विवाद ऐसे समय हुआ है जब रिपब्लिकन पार्टी का ये बड़ा टैक्स बिल संसद में पास होने की तैयारी में है। मस्क का प्रभाव पार्टी के खर्च पर नजर रखने वाले नेताओं पर काफी है। अब सवाल यह है कि मस्क की नाराजगी कहीं इस बिल को ही रोक न दे।

हाउस स्पीकर माइक जॉनसन ने कहा कि उन्हें मस्क की नाराजगी का अंदाजा नहीं था। उन्होंने मस्क से बातचीत को 'सौहार्दपूर्ण और सकारात्मक' बताया। लेकिन उसी के बाद मस्क ने सोशल मीडिया पर तीखा हमला बोल दिया।

सतर्कता और समझदारी ही सबसे बड़ी सुरक्षा

हाल ही में बेंगलुरु के चिन्नास्वामी स्टेडियम के बाहर भगदड़ मचने से 11 लोगों की मौत हो गई और 33 लोग घायल हो गए, यह बहुत ही दुखद और हृदयविदारक घटना है। वास्तव में भगदड़ की घटनाएं तब घटित होतीं हैं जब भीड़ अपना नियंत्रण खो देती है। बहुत बार अफवाहों के फैलने , खौफ,डर या घबराहट और सीमित जगह के कारण भी भगदड़ की घटनाएं घटित हो जातीं हैं। खराब भीड़ प्रबंधन, जैसे कि पर्याप्त सुरक्षाकर्मी या निकास के लिए स्पष्ट मार्ग न होना, भी भगदड़ का कारण बन सकता है। बेंगलुरु में जो घटना घटित हुई है, उसमें एक लाख से भी ज्यादा फैंस रॉयल चैलेंजर्स बेंगलुरु की जीत (18 साल बाद आईपीएल ट्रॉफी की जीत का जश्न मनाने के लिए) का जश्न मनाने के लिए स्टेडियम के बाहर जमा हुए थे। वास्तव में, जब यह हादसा हुआ, उस समय स्टेडियम का गेट नहीं खुला था और बड़ी संख्या में लोग एक छोटे से गेट को धक्का देकर तोड़ने की कोशिश कर रहे थे कि इसी दौरान अचानक भगदड़ मच गई। बताता जा रहा है कि वहां करीब एक लाख लोगों के आने की उम्मीद थी, लेकिन संख्या दो लाख से भी अधिक के आसपास पहुंच गई और स्टेडियम के इर्द-गिर्द भी काफी लोग जीत का जश्न मनाने के लिए जमा हो गए थे। यह ठीक है कि किसी टीम की जीत पर दर्शकों का उत्साह स्वाभाविक ही होता है लेकिन इतने बड़े आयोजन की तैयारियां बहुत ही माकूल होनी चाहिए, क्यों कि आइपीएल का हमारे देश में एक बड़ा क्रेज है और ऐसे आयोजनों पर काफी भीड़ उमड़ती है। हजारों सुरक्षा कर्मी भी भीड़ को नियंत्रित नहीं कर पाए, और ऐसा तब घटित होता है जब मैनेजमेंट सही नहीं होता है। कहना गलत नहीं होगा कि यह पूरी घटना कहीं न कहीं प्रशासन की लापरवाही और भीड़ प्रबंधन में विफलता को ही दर्शाती है। यदि समय रहते भीड़ को नियंत्रित करने के वैकल्पिक उपाय, जैसे कि पर्याप्त वैरि-केडिंग, अतिरिक्त पुलिस बल की तैनाती, आपातकालीन निकासी की व्यवस्था इत्यादि पहले से की गई होती तो ऐसी हृदयविदारक घटना को टाला जा सकता था। घटना के संदर्भ में मीडिया के हवाले से यह भी सामने आया है कि आरसीबी ने अपने प्रशंसकों को मुफ्त पास बांटे, जिसकी वजह से अचानक भीड़ इतनी बढ़ गई। बहरहाल, यहां यह कहना गलत नहीं होगा कि भगदड़ की इस त्रासदी के दर्द ने जीत की खुशी को खत्म कर दिया है। सच तो यह है कि लोग आरसीबी की आईपीएल में जीत के जश्न का गवाह बनने आए थे, लेकिन इस त्रासदी ने अनेक परिवारों को वह दर्द दिया है,जो वो शायद ही कभी भुला पायेंगे। हमारे देश में अब तक भगदड़ की अनेक घटनाएं सामने आ चुकीं हैं, लेकिन दुःख इस बात का है कि हम ऐसी त्रासदियों से सबक नहीं लेते हैं और थोड़ी सी लापरवाही के कारण बहुत बार बड़ी घटनाएं घटित हो जातीं हैं। कहना गलत नहीं होगा कि भगदड़ एक गंभीर खतरा है, जिससे बचने के लिए हमें सतर्क रहने और उचित उपाय करने चाहिए। पाठकों को ज्ञात होगा कि कुछ समय पहले ही उत्तर प्रदेश के प्रयागराज में महाकुंभ मेला के दौरान मौनी अमावस्या के दिन मची भगदड़ में 30-40 लोगों की मौत हो गई थी।वास्तव में,भगदड़ भीड़ प्रबंधन की असफलता या अभाव की स्थिति में पैदा हुई मानव निर्मित आपदा है। अक्सर भगदड़ मचने के पीछे जो कारण निहित होते हैं उनमें क्रमशः मनोरंजन कार्यक्रम,एस्केलेटर और मूविंग वॉकवे, खाद्य वितरण, जुलूस, प्र-ाकृतिक आपदाएँ, धार्मिक आयोजन, धार्मिक/अन्य आयोजनों के दौरान आग लगने की घटनाएँ, दंगे, खेल आयोजन, मौसम संबंधी घटनाएँ आदि शामिल होते हैं। बैरिकेड्स, अवरोध, अस्थायी पुल, अस्थायी संरचनाएँ और पुल की रेलिंग का गिरना, दुर्गम क्षेत्र (पहाड़ियों की चोटी पर स्थित धार्मिक स्थल जहाँ पहुँचना मुश्किल है), फिसलन युक्त या कीचड़ युक्त मार्ग, संकरी गलियाँ एवं संकरी सीढ़ियाँ, खराब सुरक्षा रेलिंग, कम रोशनी वाली सीढ़ियाँ, बिना खिड़की वाली संरचना, संकीर्ण एवं बहुत कम प्रवेश या निकास स्थान, आपातकालीन निकास का अभाव भी बहुत बार भगदड़ के कारण बन सकते हैं। अप्रभावी भीड़ प्रबंधन तो भगदड़ मचने का कारण है ही। बहुत बार यह देखा जाता है कि किसी एक प्रमुख निकास मार्ग पर ही लोगों की निर्भरता होती है ,जो भगदड़ का कारण बन जाती है। आज अक्सर यह भी देखने को मिलता है कि किसी कार्यक्रम विशेष के लिए क्षमता से अधिक लोगों को अनुमति दे दी जाती है। बहुत से स्थानों पर उचित सार्वजनिक संबोधन प्रणाली का भी अभाव होता है, जिससे सूचना देने में दिक्कत आती है। भीड़ अनेक बार गैर-जिम्मेदाराना व्यवहार अपनाती है और सुरक्षा नियमों का ठीक से पालन नहीं करती है। बेंगलुरु में आरसीबी के जश्न के दौरान जो भगदड़ मची,उसका कारण स्टेडियम के पास बने एक नाले के अस्थायी स्लैब का टूटना बताया जा रहा है, जिस पर खड़े होकर लोग टीम को देखने की कोशिश कर रहे थे। मीडिया रिपोर्ट्स बतातीं हैं कि जब स्लैब अचानक टूटकर गिरा, तो वहां मौजूद लोगों में अफरा-तफरी मच गई और भगदड़ जैसी स्थिति बन गई। मीडिया रिपोर्ट्स में यह भी आया है कि बेंगलुरु के मेट्रो स्टेशन पर भी आरसीबी की विक्ट्री परेड देखने जाने वालों की भारी भीड़ जमा थी और वहां सुरक्षा के इंतजाम पर्याप्त नहीं थे। ये तो गनीमत रही की, मेट्रो स्टेशन पर कोई हादसा नहीं हुआ।हालांकि, यह भी सामने आया है कि बेंगलुरु ट्रैफिक पुलिस ने पहले से ही आरसीबी की विजय परेड को देखते हुए ट्रैफिक एडवाइजरी जारी की थी, लेकिन मौके पर सुरक्षा के पर्याप्त इंतजाम नहीं थे। भीड़ का आंकलन गलत साबित हुआ और क्राउड कंट्रोल पूरी तरह फेल हो गया। अंत में यही कहूंगा कि यदि बेंगलुरु के चिन्नास्वामी स्टेडियम में व उसके बाहर अच्छी चाक चौबंद सुरक्षा व्यवस्था और ट्रैफिक मैनेजमेंट होती तो ऐसी घटना को घटित होने से रोका जा सकता था। वास्तव में होना तो यह चाहिए कि सार्वजनिक कार्यक्रमों के लिए हर सुरक्षा प्रोटोकॉल की समीक्षा हो और उसे सख्ती से लागू किया जाना चाहिए। हाल फिलहाल जरूरत इस बात की है कि सभी को मिलकर डैमेज कंट्रोल पर काम करना चाहिए तथा साथ ही साथ हादसे की न्यायिक जांच करवाई जानी चाहिए, ताकि घटना के वास्तविक कारणों का पता लगाया जा सके तथा भविष्य में ऐसी घटनाओं को रोकने के लिए एहतियात बरती जा सके। यह समय एक दूसरे पर आरोप-प्रत्यारोप लगाने का समय नहीं है, और इस पर तुच्छ राजनीति करने से राजनीतिक दलों व उनके नेताओं को बाज आना चाहिए। वास्तव में भीड़ प्रबंधन एक विज्ञान है और भीड़ को प्रबंधित करने के लिए आज अनेक तकनीकी उपकरण हैं, जिन्हें काम में लाया जा सकता था। वास्तव में सार्वजनिक आयोजनों के दौरान भीड़ को प्रबंधित करने के लिए पूर्व में ही गहन प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए तथा साथ ही साथ भीड़ को प्रबंधित करने के लिए हमारे पास अच्छी योजनाएं भी होनी चाहिए। अंत में यही कहूंगा कि भगदड़ को रोकने के लिए भीड़ प्रबंधन पर ध्यान देना चाहिए और लोगों को भगदड़ के दौरान कैसे सुरक्षित रहना है, इसकी जानकारी देनी चाहिए। कहना गलत नहीं होगा कि भगदड़ में सतर्कता और समझदारी ही सबसे बड़ी सुरक्षा है। इतना ही नहीं, भविष्य में इस तरह के बड़े व सार्वजनिक आयोजनों के लिए एक मानक संचालन प्रक्रिया (एसओपी) तय की जानी चाहिए, और उसका अनुपालन भी सुनिश्चित किया जाना चाहिए। वास्तव में, सावधानी, संयम और जागरूकता ही हमें सुरक्षित रख सकती है।

सुनील कुमार महला
(लेखक उत्तराखंड के टिप्पणीकार हैं।)

पाकिस्तान को वित्तीय सहायता देने का भारत ने किया विरोध

रुचिका चित्रवंशी

भारत ने पाकिस्तान को एशियाई विकास बैंक (एडीबी) से 80 करोड़ डॉलर की वित्तीय सहायता मंजूर होने का कड़ा विरोध किया है। सूत्रों ने कहा कि भारत ने विरोध जताते हुए आशंका जताई है कि एडीबी के संसाधनों का गलत इस्तेमाल किया जाएगा।

एडीबी की बोर्ड बैठक में पिछले दिनों पैकेज पर मतदान हुआ था, जिसमें भारत ने हिस्सा नहीं लिया। भारतीय अधिकारियों ने एडीबी को चेताया है कि पाकिस्तान का रक्षा व्यय बढ़ रहा है, कर-जीडीपी अनुपात घट रहा है और प्रमुख वृहद आर्थिक सवधारों पर उसने कोई प्रगति नहीं दिखाई है।

एडीबी ने पाकिस्तान में राजकोषीय मजबूती बरकरार रखने तथा लोक वित्त प्रबंधन सुधारने के लिए 80 करोड़ डॉलर के पैकेज को मंजूरी दे दी। पाकिस्तान के लिए एडीबी की कंट्री डायरेक्टर एमा फैन ने कहा, 'पाकिस्तान ने वृहद आर्थिक हालात सुधारने में काफी प्रगति की है।'

लेकिन भारत ने कहा है कि एडीबी और अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष (आईएमएफ) की वित्तीय सहायता वाले पिछले कार्यक्रमों ने वृहद आर्थिक माहौल को मजबूती दे दी होती तो पाकिस्तान 24वें राहत कार्यक्रम के लिए आईएमएफ के दरवाजे पर पहुंचा ही नहीं होता।

सूत्रों के मुताबिक भारत ने कहा है कि इस तरह का पिछला प्रदर्शन सवाल खड़े करता है कि कार्यक्रम का ढांचा क्या वाकई कारगर था और उन्हें कैसे लागू किया गया था या उनकी निगरानी किस तरह की गई थी।

पहलगाम में 22 अप्रैल, 2025 को आतंकवादी हमला होने के बाद भारत और पाकिस्तान के बीच तनाव बढ़ गया। इस हमले में 26 पर्यटक मारे गए थे, जिसके बाद ऑपरेशन सिंदूर चलाया गया।

‘दूसरा मत’ प्रकाशन

‘आमने-सामने’ अपने-आप में एक ऐतिहासिक इंटरव्यू-संग्रह है। इस संग्रह में देश की 62 अहम शख़्सियतों एवं हस्तियों के साक्षात्कार शामिल हैं। यह संग्रह देश ही नहीं विदेशों में भी ख़ासा चर्चित रहा है।

देश के जाने-माने प्रकाशन **‘राजपाल’** के प्रकाशक एवं डीएवी मैनेजमेंट कमिटी के वायस प्रेसिडेंट **विश्वनाथ** जी ने अपने पत्र में स्पष्ट लिखा है,- “इस तरह के विशाल इंटरयू-संग्रह देश ही नहीं बल्कि विदेशों में भी अभी तक नहीं आए हैं।

आमने-सामने (मूल्य 750/)

सामना (मूल्य 1100/)

‘सामना’ भी एक महत्वपूर्ण इंटरव्यू-संग्रह के तौर पर **‘आमने-सामने’** की तरह सामने आया है। इसे भी शख़्सियतों एवं साक्षात्कार की कला को क़ुबुल करने वाले लोगों ने हाथों-हाथ लिया है। इस संग्रह में देश की विभिन्न क्षेत्रों की 82 हस्तियों की इंटरव्यू की शक्ल में लेखा-जोखा एवं उनकी हस्ती की पड़ताल है।

अपने-अपने क्षेत्र में मील का पत्थर साबित होने वाले और देश व दुनिया के सामने अपना लोहा मनवाने वाले लोगों के एक समूह विशेष इस अंक में शामिल हैं।

ग्लोबल ऑब्ज़र्वर
मतलब निर्भीक और निष्पक्ष
इस छोर से उस छोर तक
RNI NO. DELHIN/2016/71079

निर्भीक पत्रकारिता की जीती जागती मिसाल है ग्लोबल ऑब्ज़र्वर

आपके मन की बात होती है यहां साफ़गोई के साथ

सरकार की आलोचना इसलिए कि यह पत्रकारिता का धर्म है